अध्याय - 2

महादेवी वर्मा और रवीन्द्रनाथ ठाकुर की रहस्यवादी कविताएँ : एक परिचय

अध्याय - 2

महादेवी वर्मा और रवीन्द्रनाथ ठाकुर की रहस्यवादी कविताएँ : एक परिचय

रवीन्द्रनाथ ठाकुर विश्व प्रसिद्ध रचनाकार हैं और कविगुरु के रूप में ख्यात हैं। हिंदी की महादेवी वर्मा छायावाद की प्रसिद्ध कवयित्री रही हैं और अपनी रचनागत विशिष्टताओं के कारण स्वतंत्र स्थान की अधिकारिणी भी है। दोनों के काव्य की मूलभूत विशेषताओं के अंतर्गत रहस्यवाद हैं और इस पर विशद चर्चा करने से पहले दोनों के पारिवारिक जीवन के प्रति ध्यान केन्द्रित करना आवश्यक है; क्योंकि दोनों के भीतर के सर्जक कहीं न कहीं उस परिवेश से प्रभाव ग्रहण कर अपने सृजनात्मक क्षेत्र को विस्तार देते है।

समय व्यक्ति का निर्माण करता है। एक विशिष्ट समय में विशिष्ट व्यक्ति का जन्म होता है और यही इतिहास की भी नियति रही है। व्यक्ति के निर्माण में घर-परिवार, जन्म-स्थान, शिक्षा- दीक्षा एवं पेशा आदि की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इस संदर्भ में रवीन्द्रनाथ एवं महादेवी वर्मा के उस वातावरण का विश्लेषण अपेक्षित है, जिसने इन दोनों के भीतर के रचनाकारों का निर्माण किया।

(क) महादेवी वर्मा : एक परिचय

जन्म वर्ष, जन्म स्थान – महादेवी वर्मा का जन्म उत्तर प्रदेश के फरुखाबाद में 24 मार्च 1907 ई० में होली के दिन हुआ था। इनके जन्म वर्ष को लेकर विवाद हैं। दूधनाथ सिंह महादेवी का जन्म वर्ष 1902 ई० स्वीकारते हैं। अपनी प्रसिद्ध आलोचनात्मक पुस्तक 'महादेवी' में इन्होंने तर्कपूर्ण बात रखते हुए कहा हैं कि – "महादेवी अंत तक मानती रहीं कि वे सन 1907 में ही पैदा हुई थीं। अर्थात वे अपनी छोटी बहन (श्रीमती श्यामा देवी, जन्म 14 नवम्बर 1904) से

तीन साल छोटी थीं।"[1] परन्तु अधिकांश विद्वान उनका जन्म वर्ष 1907 ई० ही स्वीकारते हैं।

<u>शिक्षा और कर्म जीवन –</u> महादेवी वर्मा का बचपन से ही शिक्षा के प्रति असीम अनुराग रहा हैं। 1912 ई० में जब इनकी उम्र 5 वर्ष थी, इंदौर के मिशन स्कूल में इनकी प्रारंभिक शिक्षा आरम्भ हुई। इसके साथ ही घर में भी इन्हें संस्कृत, उर्दू, चित्रकला, संगीत आदि की शिक्षा दी जाने लगी। इसके उपरांत सन 1919 ई० में प्रयाग के क्रास्थवेट कॉलेज में प्रविष्ट हुई। यहाँ से उन्होंने 1921 ई० में मिडिल परीक्षा उत्तीर्ण की जो कि यादगार रही, क्योकि समस्त प्रान्त में उन्हें अव्वल स्थान प्राप्त हुआ था। इसके चलते उन्हें राजकीय छात्र-वृत्ति प्राप्त हुई। आगे भी यह क्रम जारी रहा, 1925 ई० में इंट्रेंस परीक्षा भी प्रथम श्रेणी में उतीर्ण हुई और वृत्तिधारिणी बनी। 1927 ई० में इन्टर अच्छे अंकों से संपन्न हुई और छात्र-वृत्ति प्राप्ति का यह सिलसिला जारी रहा। 1929 ई० में बी० ए० (अंग्रेजी, दर्शनशास्त्र और संस्कृत) की परीक्षा प्रथम श्रेणी में फिर बीमारी के कारण पढाई दो वर्षों तक बाधित रही। 1932 ई० में प्रयाग विश्वविद्यालय से संस्कृत से एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की।

1932 ई० में समय की मांग के अनुरूप गाँधी जी की प्रेरणा से हिंदी माध्यम से नारी शिक्षा के प्रसार हेतु प्रयाग महिला विद्यापीठ की स्थापना हुई। और वहाँ प्रधानाचार्य के रूप में महादेवी वर्मा की नियुक्ति हुई, साथ ही साथ इसी वर्ष 1932 में ही 'चाँद' पत्रिका का अवैतनिक कार्यभार संभाला पर यह क्रम थमा नहीं। 1960 ई० में प्रयाग महिला विद्यापीठ की उपकुलपति के रूप में उनका निर्वाचन कम गौरव की बात नहीं है। सच देखा जाय तो यह पद अपने अर्जित कद से बड़ा नहीं था।

<u>पारिवारिक परिवेश –</u> मनुष्य के व्यक्तित्व निर्माण में पारिवारिक और सामाजिक परिवेश की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। पिता गोविन्द प्रसाद वर्मा

इंदौर के 'डेली कॉलेज' में प्राध्यापक के पद पर कार्यरत थे। इनकी शिक्षा एम० ए०, एल० एल० बी० तक थी। माता हेमरानी देवी एक धर्मपरायण विदुषी एवं कला प्रिय महिला थी। स्वयं महादेवी माँ के व्यक्तित्व से प्रभावित हो, इनके विषय में लिखती हैं – "मेरी माँ बालिका वधू के रूप में जबलपुर से फरुखाबाद पहुंची तब वे अपने साथ रामचरितमानस ले गई; पूजा-पाठ ले गई और हिंदी ले गई। इस प्रकार हमारे परिवार में जो उर्दू और फारसी का ही भक्त था, हिंदी पहुंची। मैं सबसे बड़ी लड़की थी घर की। इसलिए उन्होंने अपने पूजा पाठ में मुझको सम्मिलित कर लिया। पाँच – छः वर्ष की अवस्था से ही कभी मीरा के पद, कभी सूर के पद, कभी रामचरितमानस की चौपाइयों का सस्वर गान सुन–सुनकर मैंने भी तुक मिलाना आरम्भ किया।"[2] इस सन्दर्भ से स्पष्ट होता हैं कि हेमरानी देवी पूजा-पाठ में संलग्न रहने वाली धार्मिक प्रवृति की साधिका थी। दूसरी ओर वह संगीत और अन्य कलाओं के प्रति सचेत और रूचि रखने वाली महिला भी थी।

पिताजी नास्तिक थे, किन्तु कर्मठ और सद्पुरुष थे। माता-पिता के इन्हीं विरोधी किन्तु सामंजस्यपूर्ण वातावरण में महादेवी पली-बढी थी। अर्थात उनके व्यक्तित्व में एक तरफ माँ की धार्मिक प्रवृति, सहिष्णुता और कला के प्रति समर्पण के गुण मौजुद थे तो दूसरी तरफ बौद्धिकता, कर्मठता, न्यायप्रियता एवं स्वाभिमान जैसे गुण पिता की ओर से इन्हें मिले थे। कई पीढ़ियों के बाद वर्मा परिवार में महादेवी का जन्म बहुत हर्ष का विषय रहा, अतः बाबा बांके बिहारी ख़ुशी से झूम उठे तथा महादेवी के विषय में उनका विचार बहुत ऊँचा था। उनका कहना था, "इसको हम विदुषी बनाएँगे।"[3] इस परिवेश में इनकी शिक्षा – दीक्षा का विशेष ख्याल रखा जाने लगा। इनको घर पर ही संस्कृत के लिए पंडितजी, अंग्रेजी के लिए मास्टर साहब, चित्र शिक्षक, संगीत शिक्षक, मौलवी जी इत्यादि के द्वारा विभिन्न भाषाओँ की शिक्षा दी जाने लगी। इन

विभिन्न शिक्षकों के संपर्क का प्रभाव भी इनके संस्कारों पर पड़ा, जीवन पर्यंत इसका प्रभाव उनके व्यक्तित्व में दिखा।

<u>वैवाहिक जीवन -</u> महादेवी का विवाह 9 वर्ष की उम्र में 1916 ई० में इंदौर के स्वरुपनारायण वर्मा से हुआ । जो पेशे से डाक्टर थे। परन्तु आजीवन उन्होंने बाल्यावस्था में हुई शादी को कभी स्वीकार ही नहीं किया और न ही दुबारा मुड़कर उधर देखा। आज से एक शताब्दी पहले भारतीय स्त्री के लिए विवाह नामक संस्था की अस्वीकृति कितना मुश्किलों भरा रहा होगा, यह कहने की आवश्यकता ही नहीं है । यह निर्णय उनके दृढ निश्चय का ही परिचायक था। यामा की भूमिका 'अपनी बात' में वे स्वयं कहती हैं, "मार्ग चाहे जितना अस्पष्ट रहा, दिशा चाहे जितनी कुहराच्छन्न रही परन्तु भटकने, दिग्भ्रांत होने और चली हुई राह में पग-पग गिन कर पश्चाताप करते हुए लौटने का अभिशाप मुझे नहीं मिला हैं। मेरी दिशा एक और पथ एक रहा है, केवल इतना ही नहीं वे प्रशस्त से प्रशस्ततर और स्वच्छ से स्वच्छतर होते गए हैं।"[4] महादेवी ने अपने जीवन पथ में जो उचित समझा सो किया, कोई भी भय या प्रलोभन उन्हें अपने साधना मार्ग से अलग नहीं कर सका। वह दृढ़तापूर्वक अपने मार्ग पर चलती चली गई।

महादेवी वर्मा को उनके विवाहित जीवन से विरक्ति चाहे जिस कारण से रहा हो पर स्वरुपनारायण वर्मा से उनका वैमनस्य नहीं था। श्री वर्मा जब इलाहाबाद आते महादेवी से मिलने भी जाते और कभी-कभी उन दोनों के बीच पत्राचार भी होता था। श्री वर्मा ने महादेवी के कहने पर भी दूसरा विवाह नहीं किया था। महादेवी ने पूरा जीवन एक सन्यासिनी की तरह जीया।

<u>प्रभाव और प्रेरणा -</u> रचनात्मक व्यक्तित्व निरपेक्ष नहीं होता। देशकाल, वातावरण समाज, परम्परा आदि का परोक्ष या प्रत्यक्ष प्रभाव उनकी सृजनशीलता पर पड़ना स्वाभाविक होता है। महादेवी वर्मा के साहित्य को देखने

पर लगता है, उनपर प्रारंभिक जीवन में परिवारजनों का, शिक्षकों का प्रभाव रहा है। इसी क्रम में ब्रह्म समाज (1820), आर्य समाज (1875), विवेकानंद, गाँधी, रवीन्द्रनाथ ठाकुर के सिद्धांत एवं आदर्श से समाज को नयी दिशा मिल रही थी। स्वामी दयानंद सरस्वती ने आर्य समाज के द्वारा भारतीय नवजागरण को प्रेरित किया। स्त्री शिक्षा, अंतरजातीय विवाह, साक्षरता की भावनाएँ आर्य समाज से ही प्रारम्भ हुई। इनका प्रभाव तत्कालीन भारतीय रचनाकारों पर पड़ा। महादेवी इसका अपवाद नहीं थी। पिताजी का शिक्षा- दीक्षा और उत्साहवर्द्धन व्यवहार तथा माताजी की सेवाभाव ने महादेवी के व्यक्तित्व में निखार ला दिया। उनकी माँ पूजा आरती के समय सूर, मीरा तथा तुलसी के पदों का गायन के साथ स्वरचित गीत भी गाया करती थी। उन्हें रामायण, गीता, महाभारत अंशतः तथा विनय पत्रिका पूर्णतः कंठस्थ थी। इनके नाना भी ब्रजभाषा के कवि एवं भक्त प्रवृति के थे। महादेवी पर इन सबका गहरा प्रभाव था। माता के संपर्क में अधिक रहने के कारण, माता की सहानुभूति, करुणा का प्रभाव आजीवन उनके व्यक्तित्व में दिखा। प्रबुद्ध साहित्यकार हो या अनपढ़, असभ्य कहे जाने वाले कुम्हार, धोबी, कुली सभी को उनका स्नेह मिलता रहा। गंगा प्रसाद पाण्डेय लिखते हैं – "परिग्रही जीवन को अस्वीकार करके उन्होंने अपना कोई सीमित परिवार नहीं बनाया, पर उनके जैसा विशाल परिवार – पोषण सब के वश की बात नहीं। गाय, हिरन, कुते, बिल्लियाँ, गिलहरी, खरगोश, मोर, कबूतर तो उनके चिरसंगी हैं ही, लता – पादप – पुष्प आदि तक उनकी पारिवारिक ममता के समान अधिकारी हैं।"[5]

महादेवी तथा उनकी छोटी बहन श्यामादेवी दोनों को 1919 ई. में क्रास्थवेट बोर्डिंग हॉउस भेज दिया गया। यहीं इनकी मुलाकात सुभद्रा कुमारी चौहान से हुई, जो जीवन पर्यंत चला। छायावाद के प्रवर्तक जयशंकर प्रसाद से वे वाराणसी में उस समय मिली, जब प्रसाद 'कामायनी' का दूसरा सर्ग लिख रहें थे और महादेवी स्वयं 'सांध्यगीत' लिख चुकि थी। निराला की वे बड़ी बहन ही

नहीं वरन यर्थाथ के घात- प्रतिघात से विरक्त महाकवि को पुनः सृजन से जोड़ा और जीवन में अभिभावक की भूमिका में उनकी दैनिक आवश्यकताओं को अंत तक जुटाने में लगी रहीं। प्रयाग की धरती पर सुमित्रानंदन पंत उनके अन्तरंग मित्र थे। सन 1933 ई. में महादेवी का प्रयाग में रवीन्द्रनाथ से भेंट और रवीन्द्रनाथ के प्रभाव तथा प्रेरणा के परिणामस्वरुप महादेवी ने अपनी संस्मरणात्मक कृति 'पथ के साथी' में प्रथम प्रणाम रवीन्द्रनाथ ठाकुर को ही निवेदित किया हैं। रवीन्द्रनाथ के महाप्रयाण पर रचित कविता " रवीन्द्रनाथ के महाप्रस्थान पर" रवीन्द्रनाथ के प्रति महादेवी का श्रद्धार्घ निवेदन है। उन्होंने स्वयं स्वीकार किया हैं – "टैगोर जैसा व्यक्ति तो कोई कभी युगों में कहीं एक पैदा हो जाता है। उनमे तो दर्शन, भाव, कल्पना, संगीत,सभी का अद्भुत सम्मेलन था।"[6] 1935 ई. में कलकत्ता में जापानी कवि योन नागूची के स्वागत समारोह में महादेवी ने भाग लिया और शान्तिनिकेतन में रवीन्द्रनाथ से भेट की। महादेवी रवीन्द्रनाथ से और बंगला काव्य से परिचित थी, अतः वह बंगला काव्य से प्रेरित और परिचित भी थी। सन् 1932 ई. में जब इन्होंने प्रयाग विश्वविद्यालय से संस्कृत में एम. ए. पास किया, इसी समय महादेवी महात्मा गाँधी के संपर्क में आई। गांधीजी से प्रेरित होकर सामाजिक कार्यों की ओर इनका रुझान बढ़ा और जीवन पर्यंत इनका यह प्रमुख लक्ष्य रहा। सन् 1942 के जन आन्दोलन में भी देशभक्तों को सहायता पहुंचाती रही। वस्तुतः इनमें समाज सेवा के साथ ही साथ राष्ट्रभक्ति की भावना भी थी। बंगाल के अकाल के समय 'बंग दर्शन' और चीनी आक्रमण के समय 'हिमालय' का संकलन और प्रकाशन उनकी राष्ट्र सेवा का ही प्रमाण हैं। अपने इन्ही गुणों के कारण महादेवी अपने समकालीन साहित्यकारों के बीच सम्मान की पात्र बनी रहीं। श्री अमृतलाल नागर, डा० नागेन्द्र, डा० कामिल बुल्के, नरेन्द्र शर्मा जैसे प्रतिष्ठित साहित्यकार भी इन्हें जीजी, दीदी जैसे आदरयुक्त संबोधनों से पुकारते थे। 1944 ई० में इलाहाबाद के रसूलाबाद में महादेवी द्वारा 'साहित्यकार संसद' की स्थापना

हुई। महादेवी ने 'साहित्यकार संसद' के लिए एक न्यास (ट्रस्ट) भी बनाया। इसके सदस्य सर्वश्री माखनलाल चतुर्वेदी, सियारामशरण गुप्त, इलाचंद जोशी, गुलाब राय, वृन्दावनलाल वर्मा, भदंत आनंद कौशल्यायन और हजारी प्रसाद द्विवेदी थे। दद्दा (श्री मैथलीशरण गुप्त) इसके अध्यक्ष थे और श्रीमती महादेवी वर्मा इसकी सचिव।"[7] महादेवी के व्यक्तित्व में एक आश्चर्यजनक आत्मविश्वास था जो किसी भी परिस्तिथि में उनको डिगने नहीं देता था। वे साहित्यकार के साथ साथ एक उत्कृष्ट चित्रकर्त्री भी थी। उन्होंने स्वयं स्वीकारा हैं – " शैशव से ही रंग और रेखाओं के प्रति मेरा बहुत कुछ वैसा ही आकर्षण रहा है जैसा कविता के प्रति।"[8] सैद्धांतिक रूप से महादेवी बौद्ध धर्म से भी प्रभावित थी। ये बौद्ध भिक्षुणी बनना चाहती थी, परन्तु बौद्ध गुरु का नारियों के प्रति उपेक्षापूर्ण भाव देखकर इन्होंने अपना विचार त्याग दिया। उनके काव्य में उपनिषदीय रहस्यवाद का भी प्रभाव रहा है जिसके दर्शन हमें रवीन्द्रनाथ के काव्य में भी मिलते हैं।। इन्हे आधुनिक हिंदी काव्य की मीरा भी कहा जाता है, अर्थात मीरा की संवेदनशीलता भी इनके लिए प्रेरणादायी रही हैं, साथ ही युगबोध के कारण प्राच्य और पाश्चात्य साहित्यकारों का भी प्रभाव इन पर रहा | इन्होने स्वयं ही स्वीकारा हैं - "अंग्रेजी के माध्यम से गोर्की को पढ़ा है; टाल्सटाय को पढ़ा है और इन सब का प्रभाव मुझ पर कहीं न कहीं पड़ा होगा।"[9]

<u>रचना -</u> बहुमूखी प्रतिभा की धनी महादेवी का व्यक्तित्व महान था तो उनका कृतित्व विशाल और गंभीर। उनका साहित्य गद्य और पद्य दोनों रूपों में गंभीर चिंतन के साथ प्रस्तुत होता हैं। साहित्य की जिस विधा पर उन्होंने अपनी लेखनी चलायी, साहित्य जगत में वह अपना विशिष्ट स्थान बना गई, चाहे वह काव्य हो, रेखाचित्र हो, संस्मरण या फिर व्याख्यान, सभी में वे सिद्धहस्त थी। उनकी साहित्य साधना 1914 से प्रारम्भ हो गई थी जो जीवन पर्यंत चलती रही। महादेवी में कला के प्रति आकर्षण की भावना प्रारम्भ से ही थी। सात वर्ष की अवस्था में ही माँ द्वारा पूजा आरती के गीतों को सुनकर ही इन्हें पद रचना की

प्रेरणा मिली। सनद रहे इनके नाना ब्रजभाषा के कवि थे। अतः इनके काव्य में ब्रजभाषा का प्रयोग भी मिलता है। बारह वर्ष की अवस्था में उनकी कविताएँ मासिक पत्रिका 'चाँद' में प्रकाशित होने लगी थी। गंगाप्रसाद पाण्डेय के अनुसार - "दसवां ग्यारहवां दर्जा पास करते - करते कवि - सम्मेलनों, वाद - विवाद प्रतियोगिताओं में प्राप्त तमगों और पुरस्कारों से छात्रावास का कमरा भर गया। प्रचलित प्रसिद्ध पत्र - पत्रिकाओं में कवितायें प्रकाशित होने लगी तथा काव्य मर्मज्ञों का ध्यान इस नवीन प्रांजल प्रतिभा की ओर उत्सुकता से आकर्षित होने लगा।"[10] उनकी रचनाएँ गद्य और पद्य दोनों रूपों में पूर्ण गंभीरता के साथ अपनी उपस्थिति दर्ज कराती हैं।

काव्य -यात्रा के विविध - चरण

नीहार (1930) - 'नीहार' महादेवी वर्मा की काव्य यात्रा का प्रथम सोपान है। इनमे संग्रहित 47 कविताओं में से अधिकांश कविताएँ 1924 से 1928 तक की रचनाओं का ऐसा संकलन है जिसमें उनकी विचार श्रृंखला का क्रमिक विकास होता हैं। इसका प्रकाशन वर्ष 1930 ई० है। इसमें मिलन, विरह, रहस्यात्मकता और जिज्ञासा की खोज अपने आरंभिक चरण में है। महादेवी के शब्दों में - "नीहार के रचनाकाल में मेरी अनुभूतियों में वैसी ही कुतूहलमिश्रित वेदना उमड़ आती थी जैसी बालक के मन में दूर दिखाई देने वाली अप्राप्य सुनहली उषा और स्पर्श से दूर सजल मेघ के प्रथम दर्शन से उत्पन्न हो जाती है।"[11]

रश्मि (1932) - 1932 में प्रकाशित 'रश्मि' में महादेवी के 35 गीत संकलित हैं। निश्चित रूप में प्रथम से कुछ अधिक सशक्त रचना जिसमें कवयित्री ने अनुभूति और चिंतन के आधार पर प्रकृति, जीवन, आत्मा - परमात्मा जैसे विषयों पर गहन दार्शनिक दृष्टिकोण को रखा हैं। स्पष्ट है रश्मि की कविताएँ अनुभूतिजन्य चिंतन में मिलकर दर्शन की छाप छोडती है।

<u>नीरजा (1935) -</u> 1935 में प्रकाशित नीरजा कवयित्री की काव्य साधना की तीसरा संग्रह है। जिसमे 58 कविताएँ संकलित है। इसमें नीहार की अनुभूति और रश्मि का चिंतन दोनों का समावेश दिखाई पड़ता है। जिसमें छायावाद और रहस्यवाद दोनों की प्रवृतियाँ एक साथ मौजूद है।

<u>सांध्यगीत (1936) -</u> सांध्यगीत महादेवी की चतुर्थ काव्य - कृति है। 1936 में प्रकाशित 45 गेयात्मक गीतों के काव्य संकलन में, महादेवी का चिंतन एक नयी दिशा और दार्शनिक एकाग्रता के साथ दिखाई देती है। स्वतंत्र विषयों के साथ ही साथ इस रचना में रहस्य और साधना की स्पष्ट छाप मिलती है। सांध्यगीत में महादेवी का चित्रकार रूप भी उभरकर आया है। महादेवी द्वारा अंकित चित्र इसमें संग्रहित होने से 'सांध्यगीत' अति विशिष्ट हो गया है। भाव और भाषा दोनों ही दृष्टियों से सांध्यगीत की तुलना बंगला के रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कविता 'गीतांजलि' से की जा सकती है।

<u>दीपशिखा (1942) -</u> दीपशिखा महादेवी की काव्य - साधना की पांचवी कृति है। इसका प्रकाशन 1942 में हुआ है जिसमें 51 गीत संकलित हैं। इसके अधिकांश गीत दीप से सम्बंधित है। विरह की एकाग्रता के साथ ही साथ इस कृति में महादेवी का स्वर आस्थावादी है। दीपशिखा के प्रकाशन के लगभग 6 वर्ष पूर्व ही उन्होंने अपने प्रथम चार काव्य संग्रह (नीहार, रश्मि, नीरजा, सांध्यगीत) का एकत्र संपादन 'यामा' के नाम से किया था। 'यामा' का प्रकाशन वर्ष 1936 है। दीपशिखा के प्रकाशन के पश्चात् ही सन् 1942 - 43 में बंगाल के अकाल की पीड़ा से प्रभावित होकर 'बंग दर्शन' निकाला। भारत की उत्तरी सीमा पर चीन के आक्रमण के समय राष्ट्रीय गौरव हेतु प्राचीनकाल से लेकर आधुनिक काल तक के कवियों का हिमालय पर लिखित कविताओं का संकलन 'हिमालय' नाम से सन् 1963 में प्रकाशित हुआ। जिसमे वेद - वाणी, बाल्मीकि, थेरीगाथा, अश्वघोष, कालिदास, भवभूति और जयदेव की लालित्यपूर्ण रचनाओं के मार्मिक

काव्यांशों का हिंदी में रूपांतरण मिलता है। इन सब के अतिरिक्त 'प्रथम आयाम' (1982), 'अग्निरेखा' (1990), संधिनी (1964), 'परिक्रमा' (1974), 'संभाषण' (1975), 'आत्मिका' (1983), 'नीलाम्बरा' जैसी कई काव्य रचनाये सामने आई। उनकी काव्य यात्रा में नीहार से लेकर दीपशिखा तक के काव्य संग्रह ही अधिक प्रसिद्ध रही हैं।

गद्य - यात्रा के विविध - चरण

प्रतिभा संपन्न महादेवी अपनी काव्य साधना में जितनी समर्पित रही, उतना ही समर्पण उनका गद्य के क्षेत्र में भी रहा। दीपशिखा की भूमिका में महादेवी स्वयं स्वीकारती हैं - "जीवन की दृष्टि से मैं बहुबंधी हूँ, अतः एकांत काव्य-साधना का प्रश्न उठाना ही व्यर्थ होता। साधारणतः मुझे भाव-विचार और कर्म का सौन्दर्य समान रूप से आकर्षित करता है, ...विशाल साहित्यिक परिवार के हर्ष-शोक मेरे अपने हैं, परन्तु उससे बाहर खड़े व्यक्तियों की सुख-दुःख कथा भी मुझे पराई नहीं लगती।"[12] महादेवी जब सातवीं कक्षा की विद्यार्थिनी थी तभी से, उनका लेखन विद्यालय द्वारा आयोजित प्रतियोगिताओं से आरम्भ हो गया था और यह आजीवन जारी रहा। 'भारतीय नारी' नामक नाटक भी इनका क्रास्थवेट कॉलेज और प्रयाग महिला विद्यापीठ में अभिनीत हो चुका था। इनका प्रथम गद्य संग्रह 'अतीत के चलचित्र' में प्रकाशित हुआ था, जिसमें इनके द्वारा कई वर्षों से लिखित रेखाचित्र संग्रहित थे। यह क्रम थमा नहीं और एक के बाद एक गद्य कृतिया सामने आने लगी।

अतीत के चलचित्र (1941) - सन् 1941 ई० में प्रकाशित 'अतीत के चलचित्र' महादेवी के गद्य साहित्य का रेखाचित्र के रूप में प्रथम प्रयास हैं। इस नामकरण से ही स्पष्ट हो जाता है कि इसमे महादेवी ने अपने जीवन के अतीत में आये ऐसे व्यक्तियों को स्थान दिया है जो अपनी चारित्रिक विशेषताओं, परिस्थितियों और पीड़ाओ के कारण उनके मस्तिष्क के चित्रपट पर हमेशा के

लिए अंकित थे। इसमे 11 रेखाचित्र संकलित हैं जिस के नाम क्रमशः इस प्रकार हैं - रामा, भाभी, बिंदा, सबिया, बिट्टो, दो फूल, घीसा, सबला, आलोपी, बदलू, लछमा। महादेवी के रेखाचित्र के सभी पात्र निम्नवर्ग से सम्बंधित दीन हीन उपेक्षित प्राणी रहें हैं।

<u>श्रृंखला की कड़ियाँ (1942) -</u> सन् 1942 ई० में प्रकाशित नारी - विषयक सामाजिक निबंधों का विवेचना प्रधान बहुचर्चित संग्रह है। इसमें संग्रहित लेख 'चाँद' पत्रिका में पहले ही प्रकाशित हो गया था। 'श्रृंखला की कड़ियाँ' में महादेवी ने नारी की विभिन्न स्थितियों को 'हमारी श्रृंखला की कड़ियाँ', 'युद्ध और नारी', 'नारीत्व का अभिशाप', 'आधुनिक नारी', 'घर और बाहर', 'हिन्दू स्त्री का पत्नीत्व', 'जीवन का व्यवसाय', 'स्त्री के अर्थ - स्वातंत्र्य का प्रश्न', 'हमारी समस्या', 'व्यक्ति और समाज', 'जीने की कला' नामक ग्यारह निबंधों के माध्यम से अपने विचार प्रकट किये हैं।

<u>स्मृति की रेखायें (1943) -</u> यह महादेवी का दूसरा संस्मरणात्मक रेखाचित्र संग्रह है, जिसमें उनकी सात रेखाचित्र संग्रहित हैं। जिनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं - 'भक्तिन', 'चीनी फेरीवाला', 'पर्वतपुत्र', 'मुन्नू की माई', 'ठकुरी बाबा', 'बिबिया', 'गूँगीया'। 1943 में प्रकाशित इस रेखाचित्र में महादेवी ने उन व्यक्तियों को आधार बनाकर लिखा हैं, जो कभी न कभी उनके जीवन में आये तथा अपनी विशेष पहचान बनाकर उनकी स्मृति में छोड़ गये।

<u>पथ के साथी (1956) -</u> सन् 1956 ई० में प्रकाशित महादेवी का यह तीसरा रेखाचित्र संग्रह है। जिसमें उन्होंने अपने साहित्यिक पथ के साथियों के रेखाचित्र संग्रहित किया हैं। इस संग्रह में सात रेखाचित्र हैं, जो क्रमशः इस प्रकार हैं - 'कवीन्द्र' (रवीन्द्रनाथ ठाकुर), 'दद्दा' (मैथिलीशरण गुप्त), 'सुभद्रा' (सुभद्राकुमारी चौहान), 'निराला भाई', 'सुंघनी साहु' (जयशंकर प्रसाद), 'पंत जी', 'कवि बापू'

(शियारामशरण गुप्त)। इन साहित्यकारों से जुड़ी घटनाक्रम को महादेवी ने अपनी लेखनी का आधार बनाया है।

क्षणदा (ललित निबंध) - 1956 ई० में प्रकाशित यह संग्रह महादेवी के मौलिक चिंतन एवं समसामयिक समस्याओं को आधार बनाकर लिखा गया है। इसमें उनके बारह आलोचनात्मक निबंध संग्रहित हैं, जिसमें कुछ लेख भारतीय साहित्य से, कुछ भारतीय समाज, संस्कृति, कला एवं दर्शन से लिया गया हैं।

साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध (आलोचनात्मक) - 1960 ई० में प्रकाशित हैं। इस संग्रह के निबंधों में लेखिका ने गहन अनुभूति, गंभीर चिंतन मनन और व्यापक जीवन दर्शन को उद्घाटित किया हैं। जीवन और साहित्य के पारस्परिक संबंधों से जुड़े विषयों, जैसे - 'हमारे वैज्ञानिक युग की समस्या', 'साहित्यकार की आस्था', 'काव्यकला', 'छायावाद', 'रहस्यवाद', 'गीतिकाव्य', 'यर्थाथ और आदर्श' पर गहनता से विचार किया हैं।

संकल्पिता (आलोचनात्मक) - 1969 ई० में प्रकाशित, महादेवी द्वारा श्री मैथिलीशरण गुप्त (दद्दा) की पुण्य स्मृति को समर्पित इस कृति में 18 निबंध हैं। इन निबंधों का विषय साहित्य, साहित्यकार और समाज तथा संस्कृति, राष्ट्र, भाषा जैसे गंभीर विषयों से जुड़े रहे हैं। इसमें कहीं आधुनिक समस्याओं पर विचार हैं तो कहीं प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं परम्परा पर।

मेरा परिवार (पशु - पक्षियों के संस्मरण) - 1971 में प्रकाशित, संस्मरण है। यह संस्मरण उन मानवेत्तर प्राणियों के जीवन पर आधारित हैं जिनका संबंध महादेवी से रहा हैं। 'नीलकंठ', 'गिल्लू', 'सोना', 'दुर्मुख', 'गौरा', 'नीलू', 'निक्की', 'रोजी और रानी', ये सभी पशु - पक्षी उनके साथ परिवार के सदस्य की तरह रहें हैं। महादेवी ने उनके व्यवहार, गुण, अवगुणों का सूक्ष्म अवलोकन किया हैं।

<u>स्मारिका -</u> 1971 में प्रकाशित इस कृति में महादेवी ने राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी, जवाहर भाई, राजेंद्र बाबू, संत राजर्षि, इन चार महापुरुषों के जीवंत स्मृति चित्र अंकित किये हैं। महादेवी ने स्वयं ही अपने गद्य लेखन के विषय में कहा हैं कि, विचार के क्षणों में मुझे गद्य लिखना ही अच्छा लगता है क्योंकि उसमें अपनी अनुभूति ही नहीं, बाह्य परिस्थितियों के विश्लेषण के लिए भी पर्याप्त अवकाश रहता है। यही महादेवी जी के लेखन की सार्थकता भी हैं।

<u>सम्मान व पुरस्कार -</u> मासिक पत्रिका 'चाँद' में उनकी कविता 12 वर्ष की उम्र से ही प्रकाशित होने लगी थी। गंगा प्रसाद पाण्डेय का कहना हैं कि, "मिडिल, दसवां, ग्यारहवाँ दर्जा पास करते - करते कवि सम्मेलनों, वाद - विवाद प्रतियोगिताओं में प्राप्त तमगों और पुरस्कारों से छात्रावास का कमरा भर गया।"[13] उन्हें आजीवन और मरणोपरांत भी प्रशासनिक, अर्द्धप्रशासनिक और व्यक्तिगत अनेक संस्थानों से सम्मान व पुरस्कार मिलते रहें।

1942 में, भारत छोड़ो आन्दोलन में महत्वपूर्ण योगदान के लिए गाँधी जी के द्वारा चाँदी का कटोरा देकर सम्मानित किया गया। इसी वर्ष, 'स्मृति की रेखाएँ' कृति पर 'द्विवेदी पदक' प्राप्त हुआ। 1943 में 'मंगला प्रसाद पुरस्कार' और 'भारत भारती' पुरस्कार से सम्मानित किया गया। स्वाधीनता प्राप्ति के कुछ वर्ष पश्चात् 1952 में उन्हें उत्तर प्रदेश विधान परिषद की सदस्या मनोनीत किया गया। इसी वर्ष प्रतिनिधि हिंदी लेखक मंडल की दक्षिण भारत यात्रा का नेतृत्व करने का गौरव मिला। 1954 में दिल्ली में स्थापित 'साहित्य अकादमी' की संस्थापक सदस्या मनोनीत हुई। 1956 में भारत सरकार द्वारा 'पद्मभूषण' की उपाधि से अलंकृत हुई। 1960 में उन्हें प्रयाग महिला विद्यापीठ का उपकुलपति पद भी प्राप्त हुआ। 1963 में लेखिका संघ दिल्ली के एक कवि गोष्ठी, जिसमें तत्कालीन प्रधानमंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू ने उनका स्वागत और राष्ट्रपति डॉ० राधाकृष्णन द्वारा अभिनन्दन किया गया। 1964 में भारती परिषद प्रयाग की ओर से कविवर पंत द्वारा अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया गया। 1982 में उत्तर

प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ द्वारा 'भारत भारती पुरस्कार' प्राप्त हुआ। इसके अगले ही वर्ष 1983 में इन्हें, उनकी महत्वपूर्ण कृति 'यामा' के लिए भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

महादेवी वर्मा की रचनाएँ

	काव्य -कृतियाँ	प्रकाशन वर्ष
1.	नीहार	1930
2.	रश्मि	1932
3.	नीरजा	1935
4.	सांध्यगीत	1936
5.	दीपशिखा	1942
6.	हिमालय	1963
7.	सप्तपर्णा (अनूदित)	1966
8.	प्रथम आयाम	1982
9.	अग्निरेखा	1990

गद्य -कृतियाँ

1.	अतीत के चलचित्र (रेखाचित्र)	1941
2.	श्रृंखला की कड़ियाँ, (नारी-विषयक सामाजिक निबंध)	1942
3.	स्मृति की रेखाएँ (रेखाचित्र)	1943
4.	पथ के साथी (संस्मरण)	1956
5.	क्षणदा (ललित निबंध)	1956
6.	साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध	1960
7.	संकल्पिता (आलोचनात्मक)	1969
8.	मेरा परिवार (पशु-पक्षियों के संस्मरण)	1971

9. चिंतन के क्षण 1986

<u>संकलन</u>

1. यामा,
   (नीहार,रश्मि,नीरजा,सांध्यगीत का संग्रह) 1936
2. संधिनी (कविता-संग्रह) 1964
3. स्मृतिचित्र (गद्य-संग्रह) 1966
4. महादेवी साहित्य (भाग-1) 1969
5. महादेवी साहित्य (भाग-2) 1970
6. महादेवी साहित्य (भाग-3) 1970
7. गीतपर्व (कविता-संग्रह) 1970
8. स्मारिका 1971
9. परिक्रमा (कविता-संग्रह) 1974
10. संभाषण (कविता-संग्रह) 1975
11. मेरे प्रिय निबंध (निबंध-संग्रह) 1981
12. आत्मिका (कविता-संग्रह) 1983
13. नीलाम्बरा (कविता-संग्रह) 1983
14. दीपगीत (कविता-संग्रह) 1983

(ख) <u>रवीन्द्रनाथ : एक परिचय</u>

भारतीय वांग्मय में रवीन्द्रनाथ सही मायने में शताब्दी पुरुष हैं। ऐसे युगस्रष्टा व्यक्तित्व विरले ही मिलते हैं। मूल्यपरक दिशा में व्यक्तित्व को विस्तार देने की साधना सचमुच विशिष्ट हैं, सृजनशील विमंडित हैं। उनकी पहचान मूलतः एक कवि के रूप में रही है, परन्तु साथ ही साथ वे कथाकार, उपन्यासकार, नाट्यकार, संगीतकार, अभिनेता, निर्देशक यहाँ तक की चित्रकार भी रहे हैं।

<u>जन्मवर्ष, जन्म स्थान -</u> कलकत्ता स्थित जोडासाको अंचल में द्वारकानाथ ठाकुर लेन के निवास स्थान में बंगाब्द 25 बैशाख 1268 साल (7 मई 1861 ई०) को 3 बजे प्रातः काल, पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर और माता शारदा देवी की चौदहवी संतान और आठवे पुत्र (रवीन्द्रनाथ) के रूप में हुआ था।

<u>शिक्षा और कर्म जीवन -</u> कवि रवीन्द्र ने अपने बचपन की स्मृतियों को 'छेलेबेला' और 'जीवनस्मृति' नामक दो पुस्तकों में कलमबद्ध किया हैं। रवीन्द्रनाथ का मन स्कूली शिक्षा में यानि औपचारिक शिक्षा में कभी नहीं रमा। घर पर ही सुदक्ष शिक्षकों के माध्यम से उनकी शिक्षा की व्यवस्था की गई। महर्षि देवेन्द्रनाथ के तीसरे पुत्र हेमेंद्रनाथ पर रवीन्द्रनाथ की आरंभिक शिक्षा का भार था। वे इस बात के पक्षधर थे कि बच्चों को मातृभाषा में ही शिक्षा मिलनी चाहिये। अतः 1864 में घर पर ही शिक्षा आरम्भ। इसके उपरांत 12 वर्ष की अवस्था में 1872 से ओरिएण्टल सेमिनरी, नार्मल स्कूल में इनकी शिक्षा चली। यही उनकी बंगला भाषा की बुनियाद तैयार हुई। इसके बाद वे बंगाल अकादमी नामक अंग्रेजी स्कूल गये। अंग्रेजी भाषा की शिक्षा में रवीन्द्रनाथ का मन नहीं लगता था । 'जीवनस्मृति' में उन्होंने लिखा हैं कि, "उस अंग्रेजी पुस्तक की जिल्द, काली भाषा किल्ष्ट विषयों की विद्यार्थियों से जरा भी सहानुभूति नहीं, बच्चों पर उस समय माता सरस्वती की कुछ भी दया नहीं दिख पड़ी।"[14] स्कूल से अधिक उन्हें घर पर पढना पड़ता था। पदार्थ-विद्या, मेघनाथवध काव्य, गणित, इतिहास, भूगोल जैसे अनेक विषयों का अभ्यास करना पड़ता था। वे घर में ही ड्राइंग और जिमनास्टिक भी सीखते थे। अंततः 1875 में कुल चौदह वर्ष की अवस्था में उन्होंने पूरी तरह से स्कूल जाना बंद कर दिया। इसके बाद उच्च शिक्षा प्राप्ति के लिए सितम्बर 1878 ई० में रवीन्द्रनाथ अपने बड़े भाई सत्येन्द्रनाथ के साथ इंग्लैंड गये। वहाँ लन्दन यूनिवर्सिटी में उन्होंने पढाई की, किन्तु शिक्षा पूर्ण किये बिना ही वापस लौट आये। विदेश जाकर वे भले ही कोई

डिग्री न ला सके, लेकिन उनकी प्रतिभा को एक नया मार्ग मिल गया था। वे जीवन पर्यंत साहित्य सेवा में लगे रहे।

रवीन्द्रनाथ की प्रथम प्रकाशित कविता 'हिन्दूमेलाय उपहार' है। इस कविता को उन्होंने 1875 ई० में 14 वर्ष की अवस्था में 'हिन्दू मेला' के उत्सव पर पाठ किया, बाद में यह कविता 'अमृतबाजार' पत्रिका में छपी थी। साहित्यिक कर्म के साथ ही साथ उन्होंने 19वी शताब्दी के नवे दशक में 'ब्रह्म समाज' की गतिविधि में भाग लिया। पिता देवेन्द्रनाथ के पद चिन्हों पर चलते हुए 'आदिब्रह्मसमाज' के संपादक का पद संभाला। पिता के इच्छानुसार जमींदारी की देखभाल का काम भी उन्हें लेना पड़ा।

1890 में दूसरी बार इंग्लैंड यात्रा पर गये। वहाँ से लौटकर इसी वर्ष जमींदारी के काम से सिलाइदह, पतिसर का भ्रमण किया। कलकत्ता में राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन में शामिल हुए एवं वन्देमातरम् गीत का प्रस्तुतीकरण किया। 21 सितम्बर 1901 को शान्तिनिकेतन में ब्रह्मचर्याश्रम की स्थापना एक छोटे से विद्यालय के रूप में हुई। इसमें सामान्य जन-जीवन तथा उच्च विचारों की प्रतिष्ठा की गयी और मूल मंत्र के रूप में 'यत्र विश्वं भवत्येकनीड़म' अर्थात विश्व को एक नीड़ में सम्मलित करने का संकल्प लिया गया। यह आश्रम कवि के कर्म जीवन का साकार प्रतिबिम्ब है। इनके पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने शान्तिनिकेतन आश्रम की स्थापना 1863 में रखी थी। 1905 में कवि रविन्द्र ने बंगभंग के विरोध में रक्षाबंधन समारोह का नेतृत्व कर, बंगभंग के विरुद्ध आन्दोलन में अंशग्रहण किया। 23 दिसम्बर 1918 को कवि द्वारा विश्वभारती की स्थापना। इसके दूसरे ही वर्ष 13 अप्रैल 1919 को जलियावाला बाग हत्याकांड के प्रतिवाद में कवि द्वारा ब्रिटिश प्रदत्त 'सर' (नाइट) की उपाधि का परित्याग। 1930 में बर्लिन में आइंसटीन से मुलाकात। 1940 में शांतिनिकेतन के आम्रकुंज में गांधीजी का कवि द्वारा अभिनन्दन। 1941 में कवि के जन्मदिन के उत्सव में 'सभ्यतार संकट' विषय पर भाषण। 7 अगस्त 1941 अर्थात बंगाब्द 1348 को

22 श्रावण में 12 बजकर 10 मिनट पर 80 वर्ष 3 माह की आयु में कवि के पैतृक निवास जोड़ासांको में मृत्यु और इनके कर्म जीवन की प्रवाहमयता का अंत हो गया।

<u>पारिवारिक परिवेश -</u> पितामह द्वारकानाथ और महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर सामाजिक और धार्मिक सुधारों से जुड़े हुए थे, इसलिए उन्होंने जोड़ासाको प्रसाद में विभिन्न सांस्कृत्तिक आदान प्रदान को बढ़ावा दिया। कट्टरपंथी हिन्दू रीति-रिवाजों से हटकर इन्होंने भ्रातृत्व से संबंध जोड़ा और राजा राममोहन राय के स्नेहयुक्त साहचर्य तथा उनकी सामाजिक सुधारवादी नीति से प्रेरित होकर ब्रह्म समाज से जुड़ गये। परिवार में सारस्वत वातावरण था, जिसका भरपूर सहयोग रवीन्द्रनाथ को मिला। रवीन्द्रनाथ के बड़े भाई द्विजेन्द्रनाथ साहित्यानुरागी थे, 'मेघदूत' का सुंदर बंगानुवाद उन्होंने किया। उनके दूसरे भाई सत्येन्द्रनाथ भारतवर्ष के प्रथम आई० सी० एस० थे। भाई ज्योतिरिन्द्रनाथ विशारद और नाटककार थे। बहन स्वर्णकुमारी उस समय की प्रतिष्ठित उपन्यास लेखिका थी। ज्योतिरिन्द्रनाथ की पत्नी कादंबरी देवी भी साहित्य अनुरागी थी। कवि रवीन्द्र के प्रति इनका विशेष अनुराग था। कादंबरी देवी पर चर्चा करते हुए, रवीन्द्रनाथ 'जीवनस्मृति' में लिखते हैं, "साहित्य में बहुठाकूरानी (कादंबरी देवी) का प्रबल अनुराग था। साहित्य की किताबें केवल समय बिताने के लिए नहीं पढ़ती थी, बल्कि उसे वे पूरे मन से ग्रहण भी करती थी। उनके साहित्य चर्चा में मैं भागीदार था।"[15]कहना न होगा कि, ठाकुर परिवार का वातावरण संगीत, साहित्य, नाटक आदि गतिविधियों से भरा पड़ा था। प्रभात मुखोपाध्याय ने इस बात को प्रमाणित करते हुए कहा हैं कि, "ज्येष्ठों सहोदरों का प्रभाव ही रवीन्द्रनाथ के ऊपर विशेष रूप से पड़ा था।"[16]

10 मार्च 1875 में कवि रवीन्द्र की माता शारदा देवी का निधन हो गया। बालक रवीन्द्र की देखरेख नौकरों द्वारा होती थी। मातृत्वहीनता के कारण भाभी कादंबरी देवी ने अपना सम्पूर्ण स्नेह उन पर न्योछावर कर दिया। भाई

ज्योतिरिन्द्रनाथ उस नाजुक दौर में उनके मित्र और मार्गदर्शक बने। 1877 में ज्योतिरिन्द्रनाथ के 'एमन कर्म आर करबो ना' में रवीन्द्र ने प्रथम अभिनय किया। 'जीवनस्मृति' में रवीन्द्रनाथ ने लिखा हैं, "साहित्य शिक्षा, भाव चर्चा में बचपन से ही ज्योतिदादा मेरे मुख्य सहायक थे। .....मैं अबाध रूप से उनके साथ भाव और ज्ञान की आलोचना में प्रवृत होता था।, वे बालक समझकर मेरी अवज्ञा नहीं करते थे।"[17] इस प्रकार स्नेह और प्रोत्साहन की उर्जा ने रवीन्द्र के कर्म जीवन एवं काव्यात्मक समृद्धि लेखनी से भर गया। कविगुरु रवीन्द्रनाथ के व्यक्तित्व निर्माण में, ठाकुर परिवार की सामाजिक, सांकृतिक, राष्ट्रीय, साहित्यिक और नैतिक परिवेश ने रवीन्द्रनाथ को विश्व स्तर पर पहुँचा दिया।

<u>वैवाहिक जीवन -</u> 9 दिसम्बर 1883 ई०, 22 वर्ष की अवस्था में जेसोर जिले के बेनीमाधव रायचौधुरी की कन्या भवतारिणी देवी के साथ रवीन्द्रनाथ का विवाह हुआ। ठाकुरबाड़ी में आने के उपरांत भवतारिणी देवी का नया नामकरण मृणालिनी देवी हुआ। वैवाहिक जीवन में इन्होंने सद्भावनापूर्ण तरीके से अपने दायित्वों का निर्वाह किया। इनकी पाँच संताने हुई, जिनमें दो पुत्र रथीन्द्रनाथ (1888 - 1961), शमीन्द्रनाथ (1898 - 1907) तथा तीन पुत्रियाँ मधुरिलता (1886 - 1918), रेणुका (1890 - 1903), मीरा (1892 - 1969) हुई। 1902 ई० में बीमारी के कारण पत्नी मृणालिनी का देहावसान। कुछ दिनों के बाद ही पुत्री रेणुका की मृत्यु, पुत्र शमीन्द्रनाथ भी चल बसे। इन व्यथाओं के बीच भी कवि की रचनात्मकता क्रियाशील रही।

<u>प्रभाव और प्रेरणा -</u> कविगुरु रवीन्द्रनाथ के व्यक्तित्व निर्माण में, ठाकुर परिवार का प्रभाव और प्रेरणा ही मुख्य उर्जा स्त्रोत रहा है। पितामह द्वारकानाथ के उदार व्यक्तित्व, आसाधारण योग्यता, दूरदर्शिता, सामाजिक विकास के लिए राष्ट्रीय कल्याण के कार्य तथा पिता देवेन्द्रनाथ की आध्यात्मिक एवं सात्विक प्रवृति का गहरा प्रभाव रवीन्द्र पर पड़ा। पिता के मानवीय धर्म की चेतना और

कुसंस्कारों के विरोध के कारण रवींद्र की मानसिकता में मानवीय प्रेम और उनके साहित्य का मूल स्वर ही 'मानवतावाद' बन गया। 'The religion of man' (1931) कवि रवीन्द्र के मानवीय प्रेम का ही रचनात्मक आधार है। साहित्यिक जीवन में आगे बढ़ने की प्रेरणा पितामह, पिता और भाई सत्येन्द्रनाथ, द्विजेन्द्रनाथ, ज्योतिरिन्द्रनाथ और भाभी कादंबरी देवी ने एक तरह से रवीन्द्रनाथ के लिए प्रेरणाभूमि का काम किया था। माता शारदा देवी के निधन के बाद बालक रवीन्द्र का बचपन नौकरों की देखरेख में बीता था, इसलिए इस पीड़ादायक अनुभूति ने उन पर बड़ी गहरी छाप छोड़ी। शिक्षा सम्बन्धी उनके विचार इसी अनुभूति की देन है। उन्होंने विद्यालय की चार दीवारी से बाहर उन्मुक्त प्रकृति की गोद में शिक्षा ग्रहण करने की प्रेरणा दी। अंग्रेजी भाषा नीरसता और कठिनाइयों को समझकर, विद्यालय की विस्तृत परम्पराओं को उन्होंने कभी स्वीकार नहीं किया। उन्होंने हर स्तर पर अपनी मातृभाषा बंगला की सरलता एवं सहजता की वकालत की। 'शिक्षा का विस्तार' निबंध में इस बात को कहा हैं कि, " हमारे देश की आधुनिक विद्या वैसी नहीं, उसका केवल विशिष्ट रूप है, साधारण रूप नहीं। इसलिए अंग्रेजी सीखकर जिन्होंने वैशिष्टय प्राप्त किया है उनके मन का सर्वसाधारण के साथ सामंजस्य नहीं।"[18] प्रकृति प्रेम और मातृभाषा के प्रति अपार क्षद्धा का ही प्रभाव रहा है। इसी पृष्ठभूमि पर 'विश्वभारती शांतिनिकेतन' की नींव रखी गयी।

रवीन्द्रनाथ जब 12 वर्ष की अवस्था में थे तब उन्हें पिता (देवेन्द्रनाथ) के साथ हिमालय स्थित सुदूर स्थानों के लिए यात्रा का अवसर प्राप्त हुआ। पहली बार वे नगर के बाहर प्रकृति के शांत परिवेश में पहुंचे थे। हिमालय के निर्जन निवास गृह में बालक रवीन्द्र अपने पिता से संस्कृत पढ़ते थे। पिता के प्रकृति प्रेम और उनके आदर्शों ने रवीन्द्रनाथ को काफी प्रभावित किया था। उत्तर भारत के कई शहरों पटना, इलाहाबाद, कानपूर, दिल्ली होते हुए अमृतसर पहुंचे। अमृतसर के स्वर्ण मंदिर में, जहाँ गुरु ग्रन्थ साहब का अखंड

पाठ होता था, इससे पिता पुत्र दोनों काफी प्रभावित हुए थे रवीन्द्र के जीवन पर इस यात्रा का काफी प्रभाव पड़ा था। साहित्य के क्षेत्र में जब रवीन्द्रनाथ का प्रादुर्भाव हुआ तब अंग्रेजी साहित्य का प्रचार-प्रसार और प्रभाव अच्छा था। इस समय शिक्षित समाज में पराधीनता की परेशानी का बोद्ध हुआ और स्वदेशाभिमान और उसके प्रति प्रेम की भावना से सम्पूर्ण ठाकुर परिवार भर उठा था। जीवन स्मृति में रवीन्द्रनाथ स्वयं स्वीकार करते हैं कि, उन दिनों हमारे साहित्य देवता थे शेक्सपीयर, मिल्टन और बायरन। इनकी रचना के भीतर की जिस चीज ने हमें खूब अच्छी तरह प्रभावित किया है, वह है हृदयावेग की प्रबलता।

किशोरावस्था में ही रवीन्द्रनाथ ने मैथिली कवि विद्यापति और भक्तिकाल एवं संत साहित्य का गहन अध्ययन किया था। संतों में रामानंद, कबीर, नानक, दादू, रज्जब तथा रैदास का उल्लेख रवीन्द्र ने कई स्थलों पर किया हैं। उन्होंने कबीर के सौ पदों का अंग्रेजी अनुवाद 'हण्ड्रेड पोयम्स आफ कबीर' के नाम से किया हैं। इन रचनाकारों का प्रभाव रवीन्द्रनाथ पर इतना अधिक पड़ा था कि, उन्होंने 'भानुसिंह ठाकुरेर पदावली' (1884) शीर्षक से एक रचना का प्रणयन अपने छद्मनाम (भानुसिंह) से भी किया था। रवीन्द्र मानस में तत्कालीन, राजनितिक, धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक, पारिवारिक परिवेश का गहरा प्रभाव पड़ा है।

<u>रचना -</u> बहुमुखी प्रतिभा संपन्न रवीन्द्रनाथ लगभग आठ वर्ष की अवस्था से ही कवि कर्म में प्रवृत हुए। उनमें प्रबल जिज्ञासा थी एवं अध्ययन चिंतन और मनन की विशिष्टता के कारण उनके ज्ञान का प्रकाश साहित्य के विविध क्षेत्रों में पूर्ण गंभीरता के साथ परिलक्षित होता हैं। इनके महत्वपूर्ण काव्य-यात्रा के विविध चरण –

<u>कवि-कहिनी (1878) -</u> यह रवीन्द्रनाथ की प्रथम मुद्रित काव्य कृति है। चार सर्गों में विभक्त इस लघु काव्य का नायक एक कवि और नायिका नलिनी हैं। नायिका की मृत्यु के बाद नायक कवि का ह्रदय -परिवर्तन होता है और वह प्रकृति में अपनी नायिका को देखता है एवं एकात्मकता का बोध करता है। इसके बाद वह विश्वप्रेम की ओर बढ़ता हैं।

<u>बनफूल (1880) -</u> आठ सर्गों में विभक्त यह एक भावनाप्रधान आख्यानमूलक काव्य है। इसमें कवि की हिमालय यात्रा का स्पष्ट प्रभाव है। यह कव्योपन्यास है जिसमें कमला, विजय, नीरद, नीरजा के प्रेम एवं संघर्ष का वर्णन है।

<u>भग्नहृदय (1881) -</u> यह एक गीतिकाव्य है। जिसके 34 सर्ग में प्रेम की अतृप्त वेदना की त्रासदी का सफल चित्रण है। इसमें कवि, अनिल, मुरला, ललिता, नलिनी, चपला, सुरुचि, माधवी तथा सुरेश, विजय, विनोद के माध्यम से नाटकीय परिवेश का सृजनकिया गया है।

<u>संध्या संगीत (1882) -</u> पयार छंद में लिखित यह रचना काव्य परंपरा के अनुकरण से मुक्ति की घोषणा करती है। इस मुक्ति में कवि ने स्वयं अपनी बोध शक्ति को पहचानकर इस राह पर चल पड़ते है।

<u>प्रभात संगीत (1883) -</u> प्रभात संगीत में तेरह लम्बी कविताएँ संग्रहित हैं। इसमें 'निर्झरेर स्वप्नभंग', 'अनंत जीवन', 'अनंत मरण', 'प्रतिध्वनि', 'महास्वप्न', 'प्रभात उत्सव' जैसे कविताओं के माध्यम से जीवन और जगत के ध्रुव सत्य को आध्यात्मिकता की अनुभूति के आधार पर समझने का प्रयास है –

"आजि ए प्रभाते रविर कर
केमने पशिलो प्राणेर पर,
केमने पशिलो गुहाँर आँधारेर प्रभातपाखिर गान।

ना जनि केनो रे एतो दिन परे जागियाँ उठिलो प्राण।

हेथाय होथाय पागलेर प्राय

घुरिया घुरिया मतिया बेड़ाय –

बाहिरिते चाय, देखिते ना पाय कोथाय कारार द्वार।"[19]

(निर्झरेर स्वप्नभंग)

<u>कडि ओ कोमल (1886) -</u> यह कवि की यौवन काल की रचना है। इस संकलन में लगभग अस्सी कविताएँ संकलित है, जिसमें विषय वैविध्य के साथ नवीन और पुरातन का समावेश है। इस संकलन की कई कविताओं में यौन जीवन की उन्मुक्त छवियाँ संयोजित है जिनमें 'स्तन', 'चुम्बन', 'हासि', 'विवसना', 'बाहु', 'यौवन स्वप्न', 'क्षणिक मिलन', 'पवित्र प्रेम' आदि कविताएँ मानवीय भावों को उद्दीप्त करने में अधिक सक्षम है। इस संकलन में जीवन के साथ मृत्यु की अनिवार्यता का भाव बोध आदि दर्शन की उपलब्धि भी हुई है।

<u>मानसी (1890) -</u> मानसी में लगभग 60 कविताओं का संकलन है, कवि के समाज, साहित्य एवं संस्कृति के प्रति दायित्व बोध का भाव निहित है। इसमें 'व्यक्त प्रेम', 'विदाय', 'निष्फल कामना' जैसी कविताओं में प्रेम की गंभीर और उदात्त भाव का अंकन मिलता है तो दूसरी ओर 'देशेर उन्नति', 'बंगवीर', 'धर्मप्रचार', 'गुरुगोविंद' जैसी कविताएँ राष्ट्रीय चेतना का स्वर उद्घोषित करती हैं।

<u>सोनारतरी (1893) -</u> यह रचना कवि ने पद्मा नदी के तट पर अपने निवास के क्षणों में लिखा था। यहाँ पद्मा नदी का प्रवाह और और कवि के अतीत जीवन की स्मृति दोनों एक दूसरे से जुड़े हुए है। इसमें 'आत्मसमर्पण', 'दरिद्रा', 'दुई पाखी', 'वसुंधरा', 'मानस-सुंदरी', 'सोनारतरी', 'निरू' आदि कविताएँ विश्व मानवताबोध का उत्कृष्ट रूप है।

चित्रा (1896) - इस संग्रह की कविताओं में अध्यात्म-दर्शन एवं जीवन देवता का आभास मिलता है। इस संग्रह में 'एबार फिराओ मोरे', 'जीवनदेवता', 'नारीर दान', 'विजयिनी', 'चित्रा', 'उर्वशी', 'उत्सव' आदि कविताएँ प्रकृति मानव एवं ईश्वर के बीच एक तारतम्य जोड़ती है।

चैताली (1896) - इस संग्रह में कवि प्रतिभा का अन्यतम रूप देखने मिलता है, जिसमें ग्राम जीवन के यर्थाथ, वन-प्रांत और आश्रम संस्कृति की झांकी दिखाई पड़ती है। इस दृष्टि से 'ऋतुसंहार', 'मेघदूत', 'तपोवन', 'मानसलोक', 'सभ्यातर प्रति', 'बंगमाता' आदि महत्वपूर्ण कविताएँ हैं। इस संग्रह में 77 कविताएँ संकलित हैं।

कणिका (1899) - उन्नीसवीं सदी के अंतिम वर्ष 1899 में कवि द्वारा लिखित 'कणिका' शीर्षक से प्रकाशित 109 कविताओं का संकलन हैं। जिसमें अधिकांश चार पंक्तियों की कविता है। इसमें कवि का जीवनानुभव ही विचार रूप में प्रकट होता है और कवि का चिन्तक रूप दिखाई पड़ता है। इस संकलन में, 'विफल निंदा', 'एक परिणाम', 'सत्येर संयम', 'सौन्दर्येर संयम', 'अपरिहरनीय' आदि महत्वपूर्ण कविताएँ हैं।

कथा, कहिनी, कल्पना, क्षणिका (1900) - धर्म साधना के साथ ही साथ कर्म को अपने जीवन की आत्म साधना से जोड़ने का आग्रह रवीन्द्र के इस काव्य संग्रह में स्पष्ट है। भारतीय जीवन दर्शन और प्राचीन रूढ़िवादिता के विरुद्ध नवीन जीवन, अपनी मातृभूमि पर गर्व, अलौकिक सत्ता की प्रकृतिमय व्याप्ति कवि के इन काव्य संग्रह में उपलब्ध है। 'कथा' में 25, 'कहिनी' में 8, 'कल्पना' में 50, 'क्षणिका' में 48 कविताएँ संकलित है। सरल भाषा, छंद, प्रतिक, काव्य-सौन्दर्य आदि की दृष्टि से इस संग्रह की कविताओं का स्थान अन्यतम है।

<u>नैवेद्य (1901) -</u> एक सौ कविताओं का संग्रह नैवेद्य कवि की अध्यात्म चेतना के चरम विकास और अलौकिक सत्ता के प्रति आत्मनिवेदन एवं एकात्म भाव को स्पष्ट रूप से उजागर करता है। कवि यहाँ वैराग्य साधना के द्वारा मुक्ति की अभिलाषा नहीं रखता बल्कि वह अपने कर्म क्षेत्र में भी गहराई से जुड़ता है।

<u>स्मरण, शिशु (1903) -</u> यह काव्य संग्रह भावात्मक रूप से कवि के व्यक्तिगत जीवन की वेदना से जुड़ा है। 27 नवम्बर 1902 को कवि की सहधर्मिणी, मृणालिनी देवी का निधन। वियोग इस अभिशप्त बेला में कवि ने कई कविताओं का सृजन किया जो स्मरण शीर्षक से 1903 ई० में प्रकाशित हुई। इस संग्रह में कुल 27 कविताएँ संग्रहित है। इसी वर्ष शिशु नामक कविता संग्रह भी प्रकाशित हुआ। इसमें 45 कविताएँ संकलित हैं जिसमें कवि अपनी संतानों के प्रति वात्सल्य भाव को उजागर किया हैं ।

<u>खेया (1906) -</u> सुख-दुःख कि वास्तविक अनुभूति में कवि ने उस अनंत के आनंदरस का पान किया जो उन्हें आत्मकेंद्रित के साथ-साथ व्यक्तिगत रूप से कर्मशील बनाता गया। इस काव्य संग्रह के रचनाकाल के समय परिवार में कई प्रिय जनों की मृत्य के उपरांत कवि का उस परम सत्ता के प्रति आस्थावान होना ही इस रचना को अधिक गंभीर बनाता है। खेया का अर्थ है नदी के एक किनारे से दूसरे किनारे तक जाना - खेया या खेवा कहलाता है। इस संग्रह में 55 कविताएँ संग्रहित है, जिसमें- दान, दिनशेष, शुभक्षण, आगमन, कृपण, प्रतीक्षा, बालिका बधू आदि महत्वपूर्ण है।

<u>उत्सर्ग (1914) -</u> यह आत्मिक अर्थात आध्यात्मिक कविता संग्रह है। इस संग्रह में 46 कविताएँ संकलित है। जिसमें - छल, चेना, प्रसाद, प्रवासी, आवर्तन, अतीत, मरणमिलन, जन्म ओ मरण आदि कविताएँ है। इस संग्रह में ससीम और असीम के द्वन्द्व और उसकी परस्परता को दिखाया गया है –

“असीम से चाहे सीमार निविड़ संग,

सीमा चाय हते असीमेर माझे हारा।
प्रलये सृजने ना जानि ए कार युक्ति,
भाव हते रुपे अविराम जावा-आसा
बंध फिरिछे खुंजिया आपन मुक्ति,
मुक्ति मागिछे बाँधनेर माझे बासा।"[20] (आवर्तन)

<u>गीतांजलि (1910), गीतिमाल्य,गीतालि (1914) -</u> रवीन्द्रनाथ द्वारा लिखित बंगला में 157 गानों का संकलन गीतांजलि का प्रकाशन सितम्बर, 1910 (बंगाब्द 1317) में इंडियन पब्लिकेशन हाउस, कोलकाता द्वारा किया गया था। इसी का अंग्रेजी अनुवाद 'song offerings' के नाम से सन् 1912 में Indian Society, London से प्रकाशित हुआ, जिसमें बंगला गीतांजलि से 53, नैवेद्य से 15, गीतिमाल्य से 16, खेया से 11, शिशु से 3, चैतालि, कल्पना, उत्सर्ग, एवं स्मरण से 1 तथा अचलायतन नाटक से 1 कविताएँ ली गयी और कुल 103 कविताओं के अनुवाद को संग्रहित किया गया। 13 नवम्बर 1913 को इसी अंग्रेजी अनुवाद को साहित्य का श्रेष्ठ सम्मान नोबेल पुरस्कार दिया गया। गीतांजलि की विशिष्ट भावभूमि और उस विराट सत्ता के प्रति गहन एकांत क्षणों में आत्मनिवेदन की पराकाष्ठा ही कवि को साहित्यिक कीर्ति के शिखर तक ले गई। कवि के निश्छल निवेदन और आत्मीय समर्पण के भाव उस चिरसंगी आराध्य को ही समर्पित है, जहाँ वह अपने समस्त अहंकार को अश्रुजल में डुबों देना चाहता है –

"आमार माथा नत करे दाओ हे तोमार
चरणधुलार तले।
सकल अहंकार हे आमार
डूबाओ चोखेर जले।"[21]
(गीतांजलि, गीत संख्या - 1)

गीतिमाल्य को गीतांजलि का ही भाव विस्तार कहा जा सकता है। इस संग्रह में 111 कविताएँ संकलित है। कवि की इन कविताओं में चिर आराध्य से निकटता हो या दूरत्व दोनों ही परिस्थिति में उसके प्रति समर्पण और आत्म-निवेदन का भाव मुखर है। 108 कविताओं का संग्रह गीताली में भी कवि की भाव यात्रा उतनी ही तीव्रता से प्रवाहित है।

बलाका (1916) - इस रचना के क्रम में प्रथम विश्व युद्ध के विश्वव्यापी विध्वंस से जुडी कवि की उद्विग्नता का आभास था। यह कृति कवि द्वारा अपने अंग्रेज मित्र पियर्सन को समर्पित की गई थी। इस संग्रह में कवि उस अवसान की ओर देखते है, जहाँ मृत्य का भय नहीं लेकिन उसकी सहज उपस्थिति का आभास मिलता है। इसमे प्रेम का लौकिक रूप अलौकिक रहस्यभावना को प्रस्तुत करता है। इसमें 45 कवितायें संग्रहित है। इस संग्रह की 'ताजमहल' शीर्षक कविता में देखा जा सकता है कि, काल के अबाध प्रवाह में जीवन, यौवन, यश, धन सब बह जाते है।

पलातका (1918) - यह वर्ष उनके लिए बहुत ही अवसादपूर्ण रहा। इसी वर्ष मई महीने में उनकी बड़ी बेटी माधुरीलता (बेला) का निधन हो गया। यहाँ जीवन और मृत्य के सहज यर्थाथ का अंकन हुआ है। पलातका का प्रधान स्वर और सन्देश 'आवागमन' है।

पूरबी (1925) - पूरबी काव्य संग्रह कवि की भाव संधिकाल की विशिष्ट रचना है। यह काव्य संकलन यूरोप - अमेरिका के भ्रमण काल में कवि ने लिखा था। इसमें कवि किस प्रकार अपने देश की माटी एवं प्रकृति के प्रति शिशुमन की तरह भाव विह्वल और आतुर हो उठता है। अर्जेंटीना की एक प्रसिद्ध महिला लेखिका विक्टोरिया ओकाम्पो के आतिथ्य प्राप्त कर कवि का मन भावुक हो उठा था। बाद में, कवि ने यह कविता संग्रह, विजया यानि विक्टोरिया ओकाम्पो को समर्पित किया था।

<u>महुआ (1929), पुनश्चय (1932), शेष सप्तक (1935), वीथिका (1935), पत्रपुट (1936), श्यामली (1936) -</u> कवि ने इस संग्रह की कविताओं में, नए रूप में अपना परिचय दिया है। इन काव्य संग्रह को नवीनतम शिल्प के प्रयोग की दृष्टि से देखा जा सकता है।

<u>रोगशय्याय (1940) -</u> जीवन के अंतिम दिनों की यह रचना है, इस समय कवि अधिकांशतः बीमार रहते थे और इस संसार से विदा लेने के लिए मानसिक रूप से तैयार थे। इसमें छोटी-छोटी 39 कविताएँ संकलित है। कवि का आत्मसंघर्ष इन कविताओं में लक्षित होता है।

<u>आरोग्य (1941), जन्मदिने (1941) -</u> यह कवि के जीवन का अंतिम काव्य संग्रह है, जिसमें कवि के कई तरह के अनुभव को स्थान मिला है। इसमें कुल 33 कविताएँ संकलित है। कवि के जन्मदिवस पर प्रकाशित 'जन्मदिने' में भी इसी भाव को देखा जा सकता है। इस काव्य में भी संसार से विदा लेने का भाव, अध्यात्म चेतना का स्वरुप दिखाई पड़ता है।

<u>शेष लेखा (1941) -</u> कवि रवीन्द्र की मृत्य के पश्चात् इसका प्रकाशन हुआ था। कवि ने अपने जीवन की अंतिम कविता मृत्य से आठ दिन पूर्व 30 जुलाई, 1941 को प्रातः 9.30 बजे लिखी। कविता बोलकर लिखाई थी। इसका संशोधन करने का अवसर भी कवि को नहीं मिला था। कविता है, "तोमार सृष्टिर पथ रखेछो आकीर्ण करि .....।" शेष लेखा काव्य संग्रह की अंतिम कविता। अंतिम ग्रन्थ का नामकरण भी कवि नहीं कर पाये थे।

<u>सम्मान व पुरस्कार -</u> कर्म जीवन के सशक्त आधार की दृष्टि से रवीन्द्रनाथ जीवन पर्यंत अनेकों सम्मान के अधिकारिणी बनें। 1907 ई० में उन्हें बंगीय साहित्य सम्मेलन का प्रथम सभापति बनाया गया। सन् 1912 में कवि रवीन्द्र तीसरी बार विलायत गये। इसी वर्ष शिकागो और हार्वड विश्वविद्यालय में

महत्वपूर्ण व्याख्यान जिसमें वे कवि के साथ-साथ मनीषी, चिंतक तथा दार्शनिक के रूप में दिखाई पड़े। कवि येट्स, जिन्होंने अंग्रेजी 'गीतांजलि' की भूमिका लिखकर पश्चिम में रवीन्द्रनाथ की ख्यति का मार्ग प्रशस्त किया। 15 नवम्बर 1913 ई० कवि रवीन्द्र को 'गीतांजलि' काव्य संग्रह पर विश्व का सर्वश्रेष्ठ साहित्य सम्मान 'नावेल' पुरस्कार के रूप में मिला। इसी वर्ष देशवाशियों की ओर से शान्तिनिकेतन में कवि का अभिनन्दन और कलकत्ता विश्वविद्यालय के विशेष अधिवेशन में डी० लिट० उपाधि प्रदान। इन्हें सन् 1915 में अंग्रेजों द्वारा 'नाइटहुड' (सर) की उपाधि भी मिली लेकिन 13 अप्रैल 1919 ई० को जलियावाला बाग़ में ह्रदयविदारक हत्याकांड से क्षुब्ध होकर उन्होंने 31 मई 1919 ई० को सर की उपाधि का परित्याग कर दिया। कवि का 1930 में यूरोप यात्रा और पेरिस में उनके द्वारा बनाये गए चित्रों की प्रदर्शनी वहाँ उनके 61वें जन्मदिन का पालन। इसी वर्ष बर्लिन में आइन्सटीन से मुलाकात।

1931 ई० में रवीन्द्रनाथ के सत्तर वर्ष पूरे होने पर भारत के साथ ही पूरी दुनिया में 'रवीन्द्र जयंती' समारोह का आयोजन हुआ। 1935 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के दीक्षांत समारोह में भाषण तथा विश्वविद्यालय की ओर से कवि को 'डाक्टर' की उपाधि से सम्मानित। 1938 को उस्मानिया विश्वविद्यालय की ओर से कवि को डी. लिट. की उपाधि प्रदान। इसी वर्ष 14 दिसम्बर को आयोजित प्रगतिशील लेखक संघ के दूसरे अधिवेशन में कवि द्वारा अध्यक्षता तथा सदेश पाठ। 7 अगस्त 1940 में कवि को शान्तिनिकेतन के सिंहसदन में ऑक्सफ़ोर्ड विश्वविद्यालय के प्रतिनिधि मंडल द्वारा 'डाक्टर ऑफ़ लिटरेचर' की उपाधि प्रदान। 1941 में जन्मदिन के उत्सव में 'सभ्यातर संकट' विषय पर व्याख्यान तथा इसी वर्ष 13 मई को त्रिपुरा के राजप्रतिनिधि मंडल द्वारा कवि को 'भारत भास्कर' सम्मान से नवाजा गया।

ब्रह्मचर्याश्रम के संचालन में कवि रवीन्द्र को रोमन कैथोलिक वेदान्तिक सन्यासी ब्रह्मबांधव उपाध्याय का प्रमुख साहचर्य मिला। रवीन्द्रनाथ को

सवर्प्रथम 'विश्वकवि' की उपाधि से इन्होंने ही विभूषित किया और 'गुरुदेव' संबोधन भी इन्हीं का दिया हुआ हैं।

रवीन्द्रनाथ की रचनाएँ –

	रविन्द्र काव्य-संग्रह	प्रकाशन वर्ष (ई० सन्०)
1.	कवि-कहिनी	1878 ई०
2.	वनफूल	9 मार्च 1880
3.	भग्न ह्रदय	1881
4.	संध्या संगीत	5 जुलाई 1882
5.	प्रभात संगीत	1883
6.	छवि ओ गान	1884
7.	शैशव संगीत	1884
8.	भानुसिंह ठाकुरेर पदावली	10 जुलाई 1884
9.	कडि ओ कोमल	17 नवम्बर 1886
10.	रविच्छाया	1885
11.	मानसी	1890
12.	सोनारतरी	1893
13.	नदी	1896
14.	चित्रा	1896
15.	चैताली	1896
16.	कणिका	1899
17.	कथा	1900
18.	कल्पना	1900
19.	क्षणिका	1900
20.	नैवेद्य	1901

21.	स्मरण	1903
22.	खेया	1906
23.	कथा ओ कहिनी	10 सितम्बर 1908
24.	शिशु	1903
25.	गीतांजलि	1910
26.	उत्सर्ग	1914
27.	गीतिमाल्य	1914
28.	गीताली	1914
29.	बलाका	7 मई 1916
30.	पलातका	अक्टूबर 1918
31.	शिशु भोलानाथ	1922
32.	पूरबी	24 जनबरी 1925
33.	लेखन	7 नवम्बर 1925
34.	महुआ	1929
35.	वनवाणी	1931
36.	परिशेष	1932
37.	पुनश्चय	1932
38.	विचित्रिता	1933
39.	शेष सप्तक	1935
40.	वीथिका	1935
41.	पत्रपुट	1936
42.	श्यामली	1936
43.	खापछाड़ा	1936
44.	छड़ार छवि	1937
45.	प्रान्तिक	1938

46.	सेंजुति	1938
47.	प्रहासिनी	1939
48.	आकाश प्रदीप	1939
49.	नवजातक	1940
50.	सोनाइ	1940
51.	रोगशय्याय	1940
52.	आरोग्य	1941
53.	जन्मदिने	1941
54.	छड़ा	1941
55.	शेष लेखा	1941

रवीन्द्र नाट्य-संग्रह		प्रकाशन वर्ष (ई० सन्०)
1.	बाल्मीकि प्रतिभा	1881
2.	भग्नह्रदय	1881
3.	रूद्रचंड	1881
4.	कालमृगया	1882
5.	प्रकृतिर प्रतिशोध	1884
6.	नलिनी	1884
7.	मायार खेला	1888
8.	राजा ओ रानी	1889
9.	विसर्जन	1890
10.	चित्रांगदा	1892
11.	गोड़ाय गलद	1892
12.	विदाय अभिशाप	1894
13.	मालिनी	1896
14.	बैकुन्ठेर खाता	1897

15.	काहिनी	1900
16.	हास्यकौतुक	1907
17.	व्यंगकौतुक	1907
18.	शारदोत्सव	1908
19.	मुकुट	1908
20.	प्रायश्चित	1909
21.	राजा	1910
22.	डाकघर	1912
23.	अचलायतन	1912
24.	फाल्गुनी	1916
25.	गुरु	1918
26.	अरुपरतन	1920
27.	ऋणशोध	1921
28.	मुक्तधारा	1922
29.	वसंत	1923
30.	गृहप्रवेश	1925
31.	चिरकुमार सभा	1926
32.	शोधबोध	1926
33.	नटीर पूजा	1926
34.	शेष वर्षण	1926
35.	रक्तकरवी	1926
36.	तपती	1929
37.	परित्राण	1929
38.	शापमोचन	1931
39.	नवीन	1932

40.	कालेर यात्रा	1932
41.	चंडालिका	1933
42.	तासेर देश	1933
43.	बांसरी	1933
44.	श्रावणकथा	1934
45.	नाट्यगीति परिशोध	1936
46.	नृत्यनाट्य चित्रांगदा	1936
47.	नृत्यनाट्य चंडालिका	1938
48.	नृत्यनाट्य मायार खेला	1938
49.	श्यामा	1939
50.	मुक्तिर उपाय	1948

(मृत्य के बाद प्रकाशित)

रविन्द्र उपन्यास		प्रकाशन वर्ष (ई० सन्०)
1.	करुणा	1879
2.	बहुठाकुरानीर हाट	11 जनवरी 1883
3.	राजर्षि	19 फरवरी 1887
4.	चोखेर बाली	1903
5.	नौकाडूबी	2 सितम्बर 1906
6.	गोरा	1910
7.	घरे बाइरे	1916
8.	चतुरंग	1916
9.	योगायोग	1929
10.	शेषेर कविता	1929
11.	दुई बोन	1933
12.	मालंच	1934

13.	चार अध्याय	1934

रवीन्द्र लघु कथा-संग्रह		प्रकाशन वर्ष (ई० सन्०)
1.	छोटो गल्प	26 फरवरी 1894
2.	विचित्र गल्प	5 अक्टूबर 1894 (प्रथम भाग)
3.	विचित्र गल्प	5 अक्टूबर 1894 (द्वितीय भाग)
4.	कथा चतुष्टय	1894
5.	गल्प दशक	1896
6.	गल्प गुच्छ	11 अक्टूबर 1900 (प्रथम खण्ड)
7.	गल्प	4 मार्च 1901
8.	कर्मफल	22 दिसम्बर 1903
9.	हितवादीर उपहार	29 अगस्त 1904
10.	आठटि गल्प	20 नवम्बर 1911
11.	गल्प चरिटि	8 मार्च 1912
12.	गल्प सप्तक	1916
13.	पयला नंबर	5 अप्रैल 1920
14.	लिपिका	17 अगस्त 1922
15.	गल्प गुच्छ	15 सितम्बर 1926 (प्रथम खण्ड, नये आकार में)
16.	गल्प गुच्छ	10 दिसम्बर 1926(द्वितीय खण्ड)
17.	गल्प गुच्छ	7 जनवरी 1927 (तृतीय खण्ड)
18.	से -	15 जुलाई 1937
19.	तीन संगी	3 जनवरी 1941
20.	गल्पसल्प	10 मई 1941
21.	गल्प गुच्छ	चतुर्थ खण्ड

रवीन्द्र निबंध संग्रह	प्रकाशन वर्ष (ई० सन्)

1.	यूरोप प्रवासीर पत्र	25 अक्टूबर 1881
2.	विविध प्रसंग	11 सितम्बर 1883
3.	राममोहन राय	18 मार्च 1885
4.	आलोचना	15 अप्रैल 1885
5.	समालोचना	26 मार्च 1888
6.	यूरोपीय प्रवासीर डायरी	1891 (प्रथम खण्ड)
7.	यूरोपीय प्रवासीर डायरी	1893 (द्वितीय खण्ड)
8.	पंचभूत	12 मई 1897
9.	आत्मशक्ति	1905
10.	विचित्र प्रबंध	1906
11.	चरित्र पूजा	1906
12.	प्राचीन साहित्य	1907
13.	लोक साहित्य	1907
14.	आधुनिक साहित्य	1907
15.	शब्द तत्व	1909
16.	विद्यासागर चरित	1909
17.	धर्म	1909
18.	शांतिनिकेतन	1909
19.	जीवन स्मृति	1912
20.	छिन्न पत्र	1912
21.	कार्त्तर इच्छाय कर्म	22 अगस्त 1917
22.	जापान यात्री	1919
23.	यात्री	1929
24.	मानुषेर धर्म	1933
25.	रसियार चीठी	1933

26. **भारत पथिक राममोहन 1933**
27. **छन्द 1936**
28. **साहित्येर पथे 1936**
29. **कालान्तर 1937**
30. **विश्व परिचय 1937**
31. **बंगला भाषार परिचय 1938**
32. **पथेर संचय 1939**
33. **छेलेबेला 1940**
34. **सभ्यतार संकट 1941**
35. **आश्रमेर रूप ओ विकास 1941**

<u>महादेवी के काव्य में रहस्यवाद :</u>

दृश्य जगत के परे भी बहुत सारी चीजें होती हैं जिन्हें जानने की मनुष्य के मन में प्रबल इच्छा होती है और यह जिज्ञासा ही रहस्यवाद की जननी है। सामान्यतः जो अज्ञात है वह अस्पष्ट होता है और उसकी अभिव्यक्ति का ढंग सामान्य या सहज न होकर विशिष्ट होता है। इस प्रयत्न में प्रतीक सबसे अधिक सहायक बनता है। अनुभूतिपरक चीजें चाहे लौकिक हो अथवा अध्यात्मिक, इसकी अभिव्यक्ति सदैव सरल नहीं होती। विशेषकर प्रणय अध्यात्म का क्षेत्र इस दायरे में आता है। छायावादी कवियों ने इन क्षेत्रों को चुना है और इनसे जुड़ी सम्वेदनाओं को व्यक्त करने में अपनी सृजनशीलता की एड़ी-चोटी एक कर दी है। महादेवी वर्मा ने इन पक्षों पर सावधिक बल दिया । साधारणतः मनुष्यों में दो तरह की प्रवृतियाँ देखी जाती हैं, एक रागपरक अर्थात लौकिक वस्तुओं के प्रति आकर्षण दूसरा विरागपरक अर्थात सांसारिक वस्तुओं के प्रति विरक्ति व अनासक्ति भाव। महादेवी में मूलतः विरागपरक मानसिक अवस्था देखि जाती है। इसलिए उनमें स्व-सुख की अपेक्षा पर-दुख कातरता अत्यधिक दृष्टिगत है।

छायावादी काव्य का बहुत बड़ा भाग रहस्यवाद से जुड़ा है। रहस्यवाद का आधुनिक रूप पहले-पहल विश्वकवि रवीन्द्रनाथ के काव्य में नजर आता है। रामचन्द्र शुक्ल सरीखे विद्वान मानते हैं कि, कवीन्द्र रवीन्द्र का हिंदी रहस्यवादी काव्य पर बड़ा प्रभाव रहा है। प्राचीन हिंदी साहित्य में कबीर की वाणी में रहस्याभिव्यक्ति के सुन्दर प्रयोग मिलते है जिनसे रवीन्द्रनाथ अनुप्रेरित थे। वास्तव में कबीर-दादू आदि संत कवियों का रहस्यवाद आधुनिक रहस्यवाद से अवश्य भिन्न है। नंददुलारे वाजपेयी के अनुसार, " भक्ति-काव्य में जीवन के लौकिक और व्यवहारिक पहलुओं को गौण स्थान देकर उनकी उपेक्षा की गयी थी, वहाँ छायावादी काव्य प्राकृतिक सौन्दर्य और सामाजिक जीवन-परिस्थितियों से ही मुख्यतः अनुप्राणित है। इस दृष्टि से वह पूर्ववर्ती भक्ति-काव्य की प्रकृति-निरपेक्षता और संसार मिथ्या की सैद्धांतिक प्रक्रियाओं का विरोधी भी है।"[22] यह भी लक्षणीय है कि, आधुनिक रहस्यवाद दर्शन के समीप होते हुए भी दर्शन से दूर है अर्थात दर्शन बुद्धि से पोषित होता है लेकिन रहस्यवाद ह्रदय पक्ष को लेकर चलता है। महादेवी के काव्य में रहस्यवाद का स्त्रोत उनका जीवन ही है। महादेवी स्वंय स्वीकार करती है कि, विरह में चिर रहने वाली साधिका को दार्शनिकता अपने पिता से और भावुकता माँ से मिला। जिसका प्रभाव उनके विरह गीतों में मधुरतम रूप में स्पष्टतः परिलक्षित होता है। सांध्यगीत (1936) के सचित्र संस्करण की भूमिका 'अपने विषय में', महादेवी रहस्य के स्त्रोत को स्पष्ट करती हुई कहती हैं, " पहले बाहर खिलने वाले फूल को देखकर मेरे रोम-रोम में ऐसा पुलक दौड़ जाता था मनो वह मेरे ही ह्रदय में खिला हो, परन्तु उसके अपने से भिन्न प्रत्यक्ष अनुभव में एक अव्यक्त वेदना भी थी; फिर यह सुख-दुख-मिश्रित अनुभूति ही चिंतन का विषय बनने लगी।"[23] प्रकृति की अरुणिमा जहाँ उन्हें मिलन सुख का अनुभव करता है वहीं ओस की बूंदों को देखकर उनका मन उदास हो जाता है। प्रकृति के अनेक रूप भावों को देखकर महादेवी के मन में जिज्ञासा होती है। महादेवी के ह्रदय की जिज्ञासा ही उनके

रहस्यवाद का प्रथम सोपान है। इस विषय और विषमयपूर्ण स्थिति पर उनको आश्चर्य होता है –

"और-यह विस्मय का संसार
अखिल वैभव का राजकुमार,
धूलि में क्यों खिलकर नादान
उसी में होता अन्तर्धान।"[24]

(रश्मि, गीत संख्या - 9)

ब्रह्म को जानने की इच्छा अति प्राचीन है। महादेवी के काव्य में वह इच्छा वर्तमान है। उस अज्ञात असीम का स्पंदन उनके ह्रदय में अनुभव होता है –

"कनक से दिन मोती सी रात,
सुनहली सांझ गुलाबी प्रातः;
मिटाता रंगता बारम्बार,
कौन जग का यह चित्राधार ?"[25]

(रश्मि, गीत संख्या - 3)

मध्यकालीन काव्य विशेषकर निर्गुण में भारतीय दर्शन काव्य-चिंतन के रूप में अभिव्यक्त हुआ है। लेकिन छायावादी कवियों ने जगत के प्रति आस्था दिखाई है। संसार को एक नयी दृष्टि से देखा है। महादेवी ने लिखा हैं –

"ऐसा तेरा लोक वेदना
नहीं, नहीं जिसमे अवसाद,
जलना जाना नहीं नहीं –
जिसने जाना मिटने का स्वाद !"[26]

(नीहार, गीत संख्या - 6)

छायावादी कवि संसार को प्रिय मिलन में साधक मानते है। उनके रहस्वाद में संतोष की झलक नहीं है। महादेवी के काव्य में प्रेम की अनुभूति की

नानाविध अभिव्यक्ति है। रहस्यवादी अतिप्राकृत क्षेत्र में विचरण करता है। उस अतिप्राकृत क्षेत्र को अनुभवगोचर बनाने के लिए प्राकृत रूपों पदार्थों और व्यापारों का आश्रय लेना पड़ता है। छायावाद के संबंध में कहा गया है कि, इसमें मनुष्य का उपेक्षित ह्रदय गा उठा। प्रतिवाद में मनुष्य की वह सामाजिक चेतना मुखर हो उठी, जिसकी छायावाद की अन्तर्मुखी चेतना ने अवहेलना की। रहस्यवाद में आत्मा की उचाईयों को छूने के लिए उसकी गहराईयों में उतरना पड़ता है। महादेवी का मार्ग ह्रदय का मार्ग है। उनमें भाव की दीप्ति भी है और उस की ऊष्मा भी। ह्रदय के मार्ग पर बढ़ने के लिए आवश्यक संकल्प और अपराजेय भावना की आवश्यकता है। रहस्यभावना गंभीर और उच्च चैतन्य की खोज है। अहं का त्याग और आत्मसमर्पण यही रहस्यवादी के लिए, जीवन की चरम उपलब्धि है। महादेवी में आत्मसमर्पण की भावना इसी का प्रतिफलन है। महादेवी 'रहस्यवाद' नामक निबंध में स्वयं स्वीकारती हैं, " रहस्योपासक का आत्मसमर्पण ह्रदय की ऐसी अवस्था है, जिसमें ह्रदय की सीमा, एक असीमता में अपनी ही अभिव्यक्ति चाहती है। ह्रदय के अनेक रागात्मक संबंधों में माधुर्यभावमूलक प्रेम ही इस सामंजस्य तक पहुँच सकता है, जो सब रेखाओं में रंग भर सके, सब रूपों को सजीवता दे सके और आत्मनिवेदक को इष्ट के साथ समता के धरातल पर खड़ा कर सके।"[27] वे अपने आप को परमात्मा में लीन करके भी अपना अस्तित्व कायम रखती है। प्रेम भाव की सफल अभिव्यक्ति के लिए दो की सत्ता आवश्यक हैं। प्रिय के साथ आँख-मिचौली, उसे खोना-पाना, महादेवी इसी में जीवन की सार्थकता देखती है और इसके लिए भेद को बनाये रखना चाहती है। वह अद्वैत में द्वैत का दर्शन करती हैं। अद्वैत में प्रेमी और प्रिय का द्वैत भी आराध्य ही है। " बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ" जीवात्मा के साथ परमात्मा के अभिन्न संबंध को मार्मिक रूप में अभिव्यक्त करने वाली उनकी कविता है। महादेवी 'अहं ब्रह्मास्मि' अर्थात शंकराचार्य के अद्वैत विचारधारा

से प्रभावित दिखती हैं, इसलिए उन्होंने आत्मा और परमात्मा का अद्वैत संबंध स्वीकार किया हैं।

महादेवी दुख की याचिका है। उनका मानस अश्रुओं के सरोवर में ही डुबकी लगाता है। बावजूद इसके वे दुख में ही सुख ढूंढती हैं। "तुम को पीड़ा में ढूंढा, तुम में ढूंढूंगी पीड़ा को" कहने वाली महादेवी को विरह और पीड़ा दोनों ही प्रिय हैं। महादेवी वर्मा के रहस्यवाद में दुःखवाद का प्रमुख प्रभाव रहा है और बौद्ध-दर्शन में जगत के दुख का मूल कारण ही तृष्णा को माना गया है। महादेवी बौद्ध दर्शन की अच्छी अध्येता रही हैं। गणपतिचंद्र गुप्त के अनुसार, "बौद्धमत में निर्वाण का सबसे बड़ा लक्षण तृष्णाओं की शांति है, इच्छाओं पर विजय-प्राप्ति एवं भोग-विलास के साधनों से विरक्ति है; इन सभी लक्षणों को महादेवी भी स्वीकार करती है।"[28] दुख को जगत का सहज प्रवृति मानते हुए उससे भागने की अपेक्षा उसे स्वीकार कर लेना ही उससे मुक्ति पाने का सर्वोत्कृष्ट उपाय है। इस मनःस्थिति को प्राप्त कर लेना निर्वाण है। महादेवी के जीवन दर्शन में भगवान बुद्ध की अनंत करुणा की भावना का स्पष्ट प्रभाव मिलता है। अतः उनके अनुसार जीवन में दुख की स्थिति ही अधिक स्थायी और व्यापक है। रश्मि की भूमिका में स्वयं महादेवी ही दुख के विषय में अपने विचार रखती हैं, "दुःख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र में बाँध रखने की क्षमता रखता है। हमारे असंख्य सुख हमें चाहे मनुष्यता की पहली सीढ़ी तक भी न पहुंचा सके; किन्तु हमारा एक बूंद आँसू भी जीवन को अधिक मधुर, अधिक उर्वर बनाये बिना नहीं गिर सकता।"[29] महादेवी के व्यक्तित्व और ज्ञान के प्रभाव से उनका काव्य दुख और करुणा से नम हो उठा। सांध्यगीत से एक उदाहरण देखिये –

"शून्य मेरा जन्म था
अवसान है मुझको सवेरा;
प्राण आकुल के लिए

संगी मिला केवल अँधेरा;
मिलन का मत नाम ले
मैं विरह में चिर हूँ !"[30]

(सांध्यगीत, गीत संख्या- 13)

चिर विरह में रहने से, महादेवी को विरह की आदत सी हो गई हैं वे प्रिय से मिलन की इच्छा नहीं रखती बल्कि सदा विरहिणी ही बनी रहना चाहती है। महादेवी की विरहानुभूति स्वभाविक एवं मर्मस्पर्शी है।

रहस्यवाद आत्मा और परमात्मा के मिलन का साधन है। उसी प्रकार महादेवी के रहस्यवाद में भी विविध पड़ावों को पार कर ही परमात्मा की प्राप्ति होती है। अतः महादेवी का रहस्यवाद परंपरा से आती विभिन्न विचार धाराओं की विशेषताओं से समृद्ध है और उसका मूल उत्स ही उपनिषद है। उनके प्रणयानुभूती में जो अलौकिक प्रिय के प्रति प्रेम है, लौकिक प्रेम की सी तीव्रता है, विरह साधना ही उनका एकमात्र साधन है जिसके सम्मुख वह मिलन तक का तिरस्कार कर देती है। ब्रह्म की सत्ता में आस्था रहस्यवादी होने का द्वितीय सोपान है। इसके उपरांत सर्ववाद की स्थिति है, जिसमें प्रकृति के हर पदार्थ में प्रिय की झलक दिखाई पड़ता है। तीसरे सोपान में रहस्यवादी अपना संबंध असीम सत्ता से जोड़ने लगता है और चौथे सोपान में साधक अपने प्रिय के सौन्दर्य का मूल्यांकन करने लगता है। प्रेम की चरम सीमा मिलन है और रहस्यवाद में साधक का साध्य में लीन होना ही मिलन है। महादेवी रहस्यवाद की साधिका है। उनके रहस्यवाद में वैदिक रहस्यभावना, वेदांत की अद्वैत भावना, प्रेम की तीव्रता और निर्गुण संत कवियों की रहस्यभावना का प्रभाव दिखाई पड़ता है। 'नीहार' से लेकर 'दीपशिखा' तक के सफ़र में उनका अलौकिक प्रेम विभिन्न रूपों में दृष्टिगोचर होता रहा है। जिसे समझने के लिए उनके काव्य विकास में ही उनकी रहस्यानुभूति को देखना होगा।

'नीहार' में रहस्यानुभूति –

नीहार महादेवी की काव्य साधना की प्रथम कृति है। इसमें कवयित्री के ह्रदय का विस्मय, जिज्ञासा और भावनाओं का बिखराव है। डा० राजेन्द्र के अनुसार, "नीहार शब्द एक प्रतीक के रूप में प्रयुक्त है जिसमें भाव की अतल जिज्ञासामय अनुभूति से उत्पन्न भावों की ऊष्मा में वेदना के अणुओं का अन्तर्भाव हो गया है। नीहार जिज्ञासा की प्रयोगशाला में वेदनाकूल अनुभूतियों का कुहासा है।"[31] नीहार के प्रथम गीत में ही कवयित्री अनुभव करती है कि, वह एक शाश्वत आत्मा है। उसका प्रिय अज्ञात है परन्तु प्रिय से बिछुड़े कितने युग बीत गए। उनके लौटने की राह देखते-देखते कितने दीपकों का निर्वाण हो गया परन्तु यह आत्मा उस अज्ञात प्रिय के मनमोहक गान को नहीं सीख पाई –

"गये तब से कितने युग बीत
हुए कितने दीपक निर्वाण
नहीं पर मैंने पाया सीख
तुम्हारा सा मनमोहन गान।"[32]

(नीहार, गीत सं०-1)

रहस्यवादी कवि अनादि युग से ही अपने अस्तित्व का बोध करता आया है। महादेवी जब प्रिय की राह देखते हुए थककर मौन हो जाती है फिर भी कवयित्री के मन में मिलन की आशा है। एक जीवात्मा के रूप में वह अपनी सीमा को समझती है –

"जब असीम से हो जायेगा
मेरी लघु सीमा का मेल
देखोगे तब देव, अमरता
खेलेगी मिटने का खेल।"[33]

(नीहार, गीत सं०-4)

जब असीम और लघु सीमा अर्थात आत्मा और परमात्मा का आध्यात्मिक मिलन होगा तब नश्वरता अमरता से खेलेगी और वह मिलन कितना सुखद होगा। इस सुखद मिलन के लिए कवयित्री व्यग्र है फिर भी वह अपने प्रिय से करुणा नहीं चाहती। वह नहीं चाहती की उससे उसके मरने और मिटने का अधिकार छीन लिया जाए। वह अमरता की चाह रखते हुए भी नश्वरता की सीमा को भी महत्व देती हैं –

"क्या अमरों का लोक मिलेगा
तेरी करुणा का उपहार,
रहने दो हे देव, अरे
यह मेरा मिटने का अधिकार।"[34]

(नीहार, गीत सं०-6)

उस अज्ञात की प्राप्ति के कितनी प्रबल लालसा है। उनका प्रिय अज्ञात देश का है फिर भी उस अज्ञात प्रियतम से आध्यात्मिक मिलन के लिए अपनी सम्पूर्ण सत्ता का विनाश कर, अपने अहम् का विसर्जन कर दृढ संकल्प के साथ साधना पथ पर चल पड़ती है। जिस प्रकार रहस्यवादी साधक अपने अराध्य को पाने के लिए निरंतर कठिन साधना में खुद को जलाता रहता है। महादेवी भी अपने अहम् को उस विराट स्वरुप में विलीन कर अपना सब कुछ देने को तत्पर रहती है। वह जानती हैं कि उस सत्ता की प्राप्ति खुद को जलाकर ही हो सकती है। उदाहरण दृष्टव्य हैं -

"ऐसा तेरा लोक वेदना
नहीं, नहीं जिसमे अवसाद,
जलना जाना नहीं, नहीं –
जिसने जाना मिटने का स्वाद !"[35]

(नीहार, गीत संख्या - 6)

नीहार में प्रियतम से मिलन की अभिलाषा बार-बार दिखाई पड़ती है। महादेवी का प्रियतम अपरिचित है लेकिन वे कामना करती है कि यदि एक बार उनका प्रियतम आ जाते तो उनके जीवन में बसंत छा जाता। फिर न तो जीवन में दुख रहता न क्लेश, यह जीवन कितना मधुर होता पर बिडम्बना यह है कि प्रिय तो उनके मन में ही है अर्थात जिस परम तत्त्व की खोज साधक ब्राह्य संसार में खोज रहा है। वह परमतत्त्व साधक के अन्दर ही व्याप्त है –

"यह कैसी छलना निर्मम
कैसा तेरा निष्ठुर व्यापार ?
तुम मन में हो छिपे मुझे
भटकाता है सारा संसार।"[36]

(नीहार, गीत संख्या - 45)

इस काव्य संग्रह में जिज्ञासा का भी भाव है और वियोग का भी अनुभव है। यही नीहार में अद्वैत दर्शन का आधार आरम्भ होता है। अतः नीहार में कौतूहलमिश्रित वेदना जिज्ञासा में मिली हुई है जैसे बच्चों में जिज्ञासा का भाव सहज रूप में होता है, महादेवी की यह प्रथम काव्य संग्रह होने के कारण इसमें शिशु की सी सहज प्रवृति मौजूद है।

'रश्मि' काव्य संग्रह में अभिव्यक्त रहस्यानुभूति –

नीहार में जिस रहस्यानुभूति के दर्शन होते है ठीक उसी का विकसित रूप रश्मि काव्य संग्रह में भी है, स्वभावतः प्रथम की अपेक्षा सशक्त और निश्चित। महादेवी स्वयं कहती हैं कि, "रश्मि को उस समय आकार मिला जब मुझे अनुभूति से अधिक उसका चिंतन प्रिय था।"[37] अर्थात रश्मि की चिंतन पद्धति ब्रह्म, जीव एवं सृष्टि के तत्त्वों का अन्वेषण है। रश्मि स्वयं ससीम का प्रतिक है, ससीम असीम का द्वैत ही महादेवी का अद्वैत है। रश्मि की यह चिंतन पद्धति कवयित्री को अद्वैतवादियों की कोटि में ला खड़ा करता है। सृष्टि के अभेद के

साथ आत्मा और परमात्मा के समान गुणों के एकाकार की चर्चा रश्मि में हुई है –

"तुम हो विधु के बिंब और मैं
मुग्धा रश्मि अजान,
लोल तरंगों के तालों पर
करती बेसुध लास
फैलाती तम के रहस्य पर
आलिंगन का पाश।"[38] (रश्मि, गीत संख्या - 20)

कवयित्री मुग्धा रश्मि अजान की भांति विधु के बिंब, जो असीम है की ओर खिची चली जाती हैं। वे स्वीकार करती हैं, कि उनका प्रिय ही असीम अर्थात विधु के बिंब और वह उसके प्रकाश का ही अंश हैं। वे ही बेसुध होकर उन तरंगों पर नृत्य करती रहती है। उसी विराट स्वरुप से उसका विच्छेद हुआ है। उनमें केवल नाम की भिन्नता है मूलतः दोनों एक है। असीम ससीम वस्तुतः एक दूसरे के पूरक है। वियोग में प्रिय के प्रति क्रंदन दार्शनिक रूप में ससीम का असीम के लिए ही विरह क्रंदन है। प्रियतम का वियोग कवयित्री के जीवन को विह्वल बनाने लगी। वे सोचने लगती है कि यदि प्रियतम से मिलन हो जाये तो यह प्रतिकूल वातावरण भी उसके लिए अनुकूल हो जाये। उदाहरण दृष्टव्य हैं –

"अलि कैसे उनको पाऊँ
वे आभा बन खो जाते
शशिकिरणों की उलझन में,"[39]

(रश्मि, गीत संख्या - 24)

यहाँ कवयित्री का प्रिय शशि के ही किरणों में आभा बनकर खो जाते है। वह स्पष्ट नहीं हो पाती की कैसे उनसे मिलेंगी। यहाँ उलझन है, जटिलता है और जटिलता ही अस्पष्टता है। जहाँ अस्पष्टता है वहाँ रहस्य होता है। कार्य कारण

सम्पर्क रहस्य में भी होता है। प्रकृति का महादेवी से गहरा संबंध हैं। वे अनुभव करती हैं कि प्रकृति के कण-कण में उनका प्रिय हैं।

जिज्ञासा का भाव कई गीतों में प्रकट हुआ है। जिज्ञासा और विस्मय रहस्यवाद की मुख्य विशेषता है। जिज्ञासा वैदिक द्रष्टाओं की भी मुख्य प्रेरणा रही है। महादेवी में भी उसी जिज्ञासा की भावना हम देख सकते है | उदाहरण अवलोकनीय हैं -

"सजनि तेरे दृग बाल !
चकित से विस्मित से दृग बाल –
आज खोए से आते लौट,
कहाँ अपनी चंचलता हार ?
झुकी जाती पलकें सुकुमार,
कौन से नव्य रहस्य के भार ?"[40]

(रश्मि, गीत संख्या - 18)

यहाँ यह प्रश्न उठता है कि, भक्तिकालीन रहस्य के मुकाबले महादेवी का रहस्य नव्य रहस्य था? नंददुलारे वाजपेयी के अनुसार," मध्यकालीन काव्य की सीमा में मानव-चरित्र और दृश्य जगत, अपने प्रकृत रूप में उपेक्षित ही रहे; जब कि नवीन काव्य में समस्त मानव अनुभूतियों की व्यापकता पूरा स्थान पा सकी।"[41] इस दृष्टि से विचार करने पर महादेवी का रहस्य भावना मानवीय और वैज्ञानिक है।

रश्मि में प्रकृति और परमात्मा में द्वैत का निराकरण हुआ। महादेवी का दुख और उनकी सहज भावनाएँ चिंतन में मिलकर, चिंतन और दर्शन की भावभूमि रश्मि की आत्मा है। वे यहाँ अनेक रचनाओं में अद्वैतवाद का अनुसरण करती प्रतीत होती है।

<u>नीरजा काव्य संग्रह में अभिव्यक्त रहस्यानुभूति -</u>

इस काव्य संग्रह में भावों की व्यापकता अधिक दिखाई पड़ता है। नीहार की अनुभूति और रश्मि का चिंतन, दोनों मिलकर नीरजा में रसात्मक अनुभूति और अभिव्यक्ति को प्रौढ़ता की ओर ले जाता है। नीरजा में महादेवी अपने भावों को स्पष्ट रूप में रखने में सफल हुई हैं। यहाँ वे सुख दुख में सामंजस्य ढूँढती हैं। इस काव्य संग्रह में जिज्ञासा, अद्वैत भाव, आत्म परिचय, साधना, वेदना, दृढ संकल्प, भाव विह्वलता तथा प्रिय की अनुभूति के चित्र अद्वैतवादी भावना के सहारे व्यक्त हुआ है। कवयित्री की आत्मा प्रिय मिलन से बेसुध सी होकर सुखानुभव करती है, ऐसी स्थिति में पहुँच कर असीम और ससीम में कोई भेद-भाव ही नहीं रह जाता –

"तुम मुझ में प्रिय ! फिर परिचय क्या !
चित्रित तू मैं हूँ रेखा - क्रम,
मधुर राग तू मैं स्वर - संगम,
तू असीम मैं सीमा का भ्रम,
काया छाया में रहस्यमय !
प्रेयसि प्रियतम का अभिनय क्या ?"[42]

(नीरजा, गीत संख्या-12)

रहस्यवादी साधक में जिज्ञासा का होना आवश्यक होता है। यहाँ आकर कवयित्री यह समझ चुकि होती है कि, उन्होंने वेदना के मधुर क्रय में किसी अदृश्य प्रियतम को पा लिया है। वह अदृश्य प्रियतम ही उन्हें निर्वाण के समान सुख - दुख मिश्रित आनंद की प्राप्ति करा सकता है। उस प्रिय के प्रति जिज्ञासा सहज है –

"पा लिया मैंने किसे इस
वेदना के मधुर क्रय में ?
कौन तुम मेरे हृदय में"[43]

(नीरजा, गीत संख्या - 7)

यह स्वाभाविक भी है कि जो प्रिय हैं उसे हम अपने चारों तरफ देखते हैं। इसलिए महादेवी प्रकृति के माध्यम से प्रिय का प्रेम, वियोग की दशा, यहाँ तक की प्रिय के आगमन का सन्देश भी प्राप्त कर लेती हैं। सम्पूर्ण विश्व के कण - कण में ही उन्हें प्रिय की आभा की चमक दिखाई पड़ती हैं। उन्हें प्राप्त करने के लिए अगर अपना सब कुछ त्याग करना पड़े तो भी वह अपने को मिटाकर उन्ही चरणों में लीन हो जाती है। उपासक और उपास्य के बीच हार जीत क्या? प्रियतम को पा लेने का सुख तो सीपी में सागर भर लेने के समान है, महादेवी कहती हैं –

"हारू तो खोऊँ अपनापन,
पाऊँ प्रियतम में निर्वासन,
जीत बनूँ तेरा ही बंधन,
भर लाऊँ सीपी में सागर
प्रिय ! मेरी अब हार विजय क्या ?"[44]

(नीरजा, गीत सं - 12)

महादेवी ने अपनी रहस्यानुभूति को लौकिक उपकरणों के सहारे जो अभिव्यक्ति दी है, वह अप्रतिम है। महादेवी के जीवन का कितना उच्च आदर्श दिखता है, जब वे अपने शारीर के प्रत्येक अंग को मोम की भांति गलाकर प्रिय का पथ युग - युगांतर तक आलोकित रखना चाहती है। वह नहीं चाहती कि, उनके प्रिय को किसी प्रकार का कष्ट झेलना पड़े। इसके लिए वह भीषण से भीषण विपतियों का सामना सहर्ष स्वीकार कर सकती है। एक रहस्यवादी साधिका के जीवन का यह उच्च आदर्श, दृढ संकल्प स्वाभाविक है, सहज है। गलने में वह दुख नहीं सुख का अनुभव करती है। इस गलने में उनका अपना ही नहीं विश्व की समवेत सत्ता का कल्याण समाया हुआ है। महादेवी लिखती हैं -

"मधुर - मधुर मेरे दीपक जल !

युग - युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल
प्रियतम का पथ आलोकित कर !
सौरभ फैला विपुल धूप बन,
मृदुल मोम सा घुल रे मृदु तन;
दे प्रकाश का सिन्धु अपरिमित,
तेरे जीवन का अणु गल - गल !
पुलक - पुलक मेरे दीपक जल !"[45]

(नीरजा, गीत सं. - 14)

आत्मा परमात्मा के प्रति आकुल प्रणय निवेदन नीरजा के गीतों में हैं। कवयित्री का रोम - रोम अपने प्रिय की आराधना में व्यस्त हैं। महादेवी एक रहस्यवादिनी हैं, जो भावात्मक रहस्यवादी शैली में अपनी प्रणय भावना को वाणी देती हैं। प्रणय जब उदात्त रूप में पहुँच जाता है तब साधक को किसी दिखावे की आवश्यकता नहीं पड़ती। वह निरंतर अपने हृदय में अपने प्रिय को जपता रहता है, तभी तो महादेवी कहती हैं -

"क्या पूजा क्या अर्चन रे ?
उस असीम का सुन्दर मंदिर मेरा लघुतम जीवन रे !
मेरी श्वासें करती रहती नित प्रिय का अभिनन्दन रे !"[46]

(नीरजा, गीत संख्या - 51)

नीरजा के वियोग प्रधान गीतों में ऐसी दीप्ति है, जो पाठक के मन को आलोकित करके आशा और उल्लास से भर देती है। नीरजा के गीतों का रहस्य आत्मकेंद्रित न होकर जगकेन्द्रित है।

'सांध्यगीत' में अभिव्यक्त रहस्यानुभूति –

इस काव्य संग्रह में चिंतन के स्तर पर महादेवी में एक नई दिशा तथा सुनिश्चित गति दिखाई देती हैं। सांध्यगीत के गीतों में प्रिय का स्मरण, कवयित्री की पीड़ा, साधना में मिलने वाले कंटक, विरहानुभूति और प्रकृति से उनका लगाव प्रकट हुआ हैं। यहाँ कवयित्री वैयक्तिक सुख - दुख की सीमा को पार कर चुकि हैं परिणामस्वरूप उनके गीतों में करुणा और वेदना के होते हुए भी, सुख - दुख मिश्रित आनंद की अनुभूति का प्रतीति होता है। यहाँ आकर उन्हें सुख और दुख में अंतर नहीं प्रतीत होता है। महादेवी को अपरिचित प्रिय का सौन्दर्य प्रकृति में दिखाई पड़ता है। प्रकृति उनके मनोभावों को व्यक्त करने में सहायक है। जिस प्रकार सांध्यगगन में न प्रकाश की किरण रहती है और न पूरी तरह कालिमा ही, उसी प्रकार कवयित्री का जीवन भी न केवल सुख न दुख बल्कि इन दोनों का मिश्रित रूप ही दिखाई पड़ता है। यह सुख दुख का समन्वय महादेवी के जीवन में अनेक विरोधी तत्त्वों में भी समन्वय ढूँढता प्रतीत होता है –

"प्रिय ! सांध्य गगन मेरा जीवन
घर आज चले सुख-दुख विहग,
तम पोछ रहा मेरा अग जग,
छिप आज चला वह चित्रित मग,
उतरों अब पलकों में पाहुन !"[47]

(सांध्य गीत, गीत सं - एक)

कवयित्री का सम्पूर्ण जीवन ही सांझ की रोशनी के समान धुंधला पड़ गया है। इस स्थिति में वह अज्ञात पाहुन के लिए आकुल-व्याकुल दिखाई पड़ती हैं रहस्य से संबंधित इसी आकुल व्याकुल अनुभूतियों के गीत सांध्यगीत में मौजूद हैं।

महादेवी की सबसे बड़ी विशेषता है, वह कठिन से कठिन परिस्थितियों को भी सहर्ष स्वीकार करना जानती हैं। उनका दृढ विश्वास हैं कि जीवन की

सरसता, दुखद शूल की भयंकरता से अधिक निखर उठता है। वे स्वीकारती हैं, कि पीड़ा तथा करुणा की अनुभूति से ही मानवता का कल्याण संभव है। इसलिए उन्होंने शूल को ही अपनी अर्चना अर्थात रहस्य साधना का माध्यम माना है। आँखों का खारा पानी अर्ध्य है। वे अपने दुख को एक पुजारी के रूप में देखती हैं –

"अर्चना हों शूल भोले,
क्षार दृग-जल अर्ध्य हो ले,
आज करुणा - स्नात उजला
दुख हो मेरा पुजारी।"[48]

(सांध्य गीत, गीत सं - 8)

चिंतन में कवयित्री सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को देख लेना चाहती हैं। वे तत्त्वचिंतन को भी अनुभूतिपरक बना देती हैं। जिस पंथ की युग युगांतर से तलाश रही हैं , महादेवी उस युग और पंथ का किनारा क्या है ? यह जानना चाहती है। उन्हें लगता है उनका जीवन सीमा में बंध रहा हैं इसलिए वे क्षितिज की कारा को तोड़कर उस पार के रहस्य को देखने के लिए आतुर हैं। रहस्यवादी साधक के लिए, जिज्ञासा और प्रियतम को जान लेने की व्याकुलता ही साधना का सुफल है –

"फिर विकल है प्राण मेरे !
तोड़ दो यह क्षितिज मै भी देख लूँ उस ओर क्या है ?
जा रहे जिस पंथ से युग कल्प उसका छोर क्या है ?"[49]

(सांध्य गीत, गीत संख्या - 26)

सांध्यगीत की विरहानुभूति पहले संग्रह से थोडा भिन्न है। यहाँ वह विरह वेदना का अनुभव तो करती हैं, लेकिन यह विरह उन्हें संगीत के समान सुखद लगता हैं। विरह ही सांध्यगीत में कवयित्री का आराध्य है। कवयित्री विरह

और मिलन में कोई भेद नहीं कर पाती और प्रिय की मधुर भावनाओं को प्राप्त कर लेने पर, ये दोनों उन्हें प्रिय लगते हैं। महादेवी कहती हैं –

"विरह का युग आज दीखा,
मिलन के लघु पल सरीखा;
दुःख सुख में कौन तीखा,
मैं न जानी औ ' न सीखा।
मधुर मुझको हो गए सब मधुर प्रिय की भावना ले।"[50]
(सांध्य गीत, गीत संख्या - 16)

उनका प्रिय अलौकिक है। उनका जीवन दुखमय है तो सुखमय भी है। नियति ने शायद इन्हीं दो रंगों से उनके जीवन पात्र को रंग दिया हैं। महादेवी अपना परिचय ही 'नीर भरी दुख की बदली' के रूप में दे रही हैं। वह बदली कण - कण पर बरस कर नये जीवन का अंकुर बनकर निकलेगा अर्थात महादेवी की वेदना भी विश्व कल्याण के लिए है –

"मै नीर भरी दुख की बदली।
रज कण पर जल कण हो बरसी
नवजीवन अंकुर बन निकली।"[51](सांध्यगीत, गीत सं.-21)

सांध्यगीत में महादेवी अपने प्रेम को व्यक्त करने के लिए प्रकृति का सहारा लेती है। वे प्रकृति के सौन्दर्य से अपना श्रृंगार करना चाहती है। प्रिय उनके ह्रदय में बसा है लेकिन उस से अनजान है। पपीहा उन्हें उद्दीप्त करता है। रहस्यवादी साधक सर्वत्र अपने अराध्य को ही ढूंढता रहता है –

"रे पपीहे पी कहाँ ?
प्रिय बसा उर में सुभग !
सुधि खोज की बसती कहाँ ?"[52]

(सांध्य गीत, गीत संख्या - 11)

इस काव्य संग्रह में कवयित्री के चिंतन में एक नई दिशा तथा सुनिश्चित गति दिखाई देती है, साथ ही दार्शनिक एकाग्रता भी उच्च स्तर पर है। संध्यागीत तक आते आते कवयित्री पूर्णतः आत्मस्थ और अंतर्लीन हो जाती है। प्रेम और वेदना का अभिव्यक्तिकरण सांध्यगीत की रचनाओं को आध्यात्मिक आधार प्रदान करता है।

'दीपशिखा' में अभिव्यक्त रहस्यानुभूति –

दीपशिखा महादेवी की पांचवी कृति हैं, जिसमें उनकी रहस्यानुभूति का चरमोत्कर्ष दिखलाई पड़ता हैं। नीहार, रश्मि, नीरजा, सांध्यगीत के गीतों की अपेक्षा 'दीपशिखा' के गीतों में अधिक प्रौढता है। यहाँ आकर वे दुःख को सुख मानने लगी और उसे एक धरोहर एक रूप में संभाल कर रखना चाहती है। महादेवी कहीं लाक्षणिक भाषा तथा कहीं प्रतीकों के द्वारा अपनी वेदना को व्यक्त करती हैं। पूरा संग्रह ही विरह का उत्कृष्ट काव्य बन गया है। इस संग्रह में दीप कई स्थलों पर प्रतीक बनकर आया हैं। यहाँ दीप का प्रतीकार्थ बहुत सार्थक हो गया है। 'दीप मेरे जल अकंपित', 'सब बुझे दीपक जला लूँ', 'यह मंदिर का दीप इसे नीरव जलने दो', 'जब यह दीप थके तब आना' यहाँ स्पष्ट है कि महादेवी अपने साधना के दीपक को पूरे धैर्य और साहस के साथ जलाये रखना चाहती हैं। कवयित्री का संकल्प रूपी दीपक रात भर जलता रहता है और अंधकार से लड़ता है। इस तरह यह दीपक अन्धकार से संघर्ष की कथा कहता है। वे अपनी साधना में तल्लीन रहना चाहती है। वे खुद को मंदिर में जलने वाला दीपक मानती हैं। वह दृढ़ संकल्प भी करती हैं कि, जब तक अंधेरा न मिट जाय वह अपनी साधना के दीपक को जलाऐ रखेंगी। यह संध्या के समय जला था और प्रकाश बेला तक जलता रहेगा –

''यह मंदिर का दीप इसे नीरव जलने दो

X X

झंझा है दिग्भ्रांत रात की मूर्छा गहरी
आज पुजारी बने, ज्योति का यह लघु प्रहरी,
जब तक लौटे दिन की हलचल
तब तक यह जागेगा प्रतिपल,
रेखाओं में भर आभा - जल
दूत साँझ का इसे प्रभाती तक चलने दो!''[53]

(दीपशिखा , गीत संख्या - 13)

दीपशिखा में जो विरह भावना है, वह निरीह और अबला का नहीं वरन् एक स्वाभिमानी नारी का विरह है। प्रिय अनजान है। कवयित्री उसे पहचानती नहीं है। वह उस अलौकिक प्रिय से प्रेम करती है और इस प्रेम का परिणाम ही विरह है। विरह रूपी पथ में आने वाले शूल को वह वरदान समझती है। उस अनजाने प्रिय के विरह में सुख और दुःख दोनों का अनुभव महादेवी को होता हैं। वे प्रिय से हार कर भी जीत का सुख अनुभव करती हैं।

''निमिष से मेरे विरह के कल्प बीते!
पंथ को निर्वाण माना ,
शूल को वरदान जाना,
जानते यह चरण कण-कण
छू मिलन-उत्सव मनाना!
प्यास ही से भर लए अभिसार रीते!
ओस से द्रुल कल्प बीते!

X X

प्राण तुमसे हार कर प्रति बार जीते!
दीप से घुल कल्प बीते''[54]

(दीपशिखा , गीत संख्या - 26)

प्रेम ही व्यक्ति को निःस्वार्थ भाव से अपने प्रेम पात्र में लीन हो जाने की प्रेरणा देता है। प्रेम की चरम परिणति ही अद्वैतभाव में होती है। महादेवी अपने प्रिय के पास संदेश भेजने में भी दुविधा का अनुभव करती हैं। उनका प्रिय तो स्वप्न में मिलकर उन्हीं में समा गया हैं फिर दूत को संदेश लेकर कहाँ भेजें -

''अलि कहाँ संदेश भेजूँ।
मैं किसे संदेश भेजूँ!
X X
नयन-पथ से स्वप्न में मिल,
प्यास में घुल साध में खिल,
प्रिय मुझी में खो गया अब दूत को किस देश भेजूँ।''[55]

(दीपशिखा , गीत संख्या - 22)

आत्मा और ब्रह्म में भेद को स्वीकारते हुए महादेवी अपने अस्तित्व को इतना विराट बना लेना चाहती हैं कि स्वयं उनके अंदर ही उस ब्रह्म की उपस्थिति का आभास हो उठता हैं। यह उनके रहस्यवाद की मुख्य विशेषता है। वे यह भी स्वीकारती हैं कि, प्रत्येक व्यक्तित्व अपनी अलग-अलग स्थिति और महत्व रखता हैं –

''सब आँखों के आँसू उजले सबके सपनों में सत्य पला!''[56]

(दीपशिखा , गीत संख्या - 27)

दीपशिखा में महादेवी के काव्य की वही स्थिति दिखाई देती है जो उसकी प्रारम्भिक कविताओं में हैं। विरह की एकाग्रता आस्था और विश्वास का स्वर इस कृति की मूल विशेषता है। इस तरह महादेवी की रहस्यानुभूति का उन्मेष 'नीहार' संग्रह में हुआ, 'सांध्यगीत' में यह अनुभूति उत्कर्ष की ओर गई। 'दीपशिखा' इसका चरमोत्कर्ष है।

<u>रवीन्द्रनाथ के काव्य में रहस्यवाद –</u>

नोबेल पुरस्कार से पुरस्कृत रवीन्द्रनाथ ठाकुर उपनिषद् के 'सत्य शिवम् और अद्वैतम्' की धारणा को मानने वाले थे। वे 'अहम् ब्रह्मास्मि' के उपासक थे। उनका मानना था मनुष्य की पूजा ही ईश्वर की पूजा हैं। उन्होंने जीवन भर अध्यात्म चिंतन और सत्य का अन्वेषण किया। उनकी समस्त रहस्यवादी कविताओं में उपनिषद् की तत्व चिन्ता एवं आध्यात्मिकता का सन्निवेश हैं। वे मानते थे कि, परमात्मा प्रेम की पूर्णता हैं। उन्होंने एक शाश्वत परम अध्यात्म सत्ता की सर्वोच्चता को स्वीकारा।

कवि रवीन्द्र की अध्यात्म चेतना का मार्ग अनुभूति का मार्ग है। उन्होंने उस असीम को हृदय के सात्विक ज्ञान एवं रसात्मक अनुभूति के आधार पर स्वीकार किया है। उसके स्वरूप को किसी निश्चित धारणा या आकृति में आबद्ध नहीं किया जा सकता। वह रूप-अरूप, सीमा-असीम, द्वैत-अद्वैत, साकार-निराकार सभी में आनंदस्वरूप विद्यमान है। उसके स्वरूप को बाँधने में वेद-वेदांत भी निष्फल है। उस असीम के प्रति जिज्ञासा कवि रवीन्द्र की रहस्यवादी कविताओं में दिखाई पड़ता है। 'गीतिमाल्य' काव्य संग्रह के गीत संख्या 10 और 22 में इस उदाहरण को देखा जा सकता हैं –

(i) **''के गो तुमि विदेशी।**
साँप खेलानो बाँशि तोमार,
बाजालो सूर की देशि।'' [57] (गीतिमाल्य, गीत संख्या -10)

(ii) **''के गो अंतरतर से।**
आमार चेतना, आमार वेदना।'' [58]
(गीतिमाल्य, गीत संख्या - 22)

कवि उस असीम के स्वरूप को प्रत्यक्ष रूप से देख नहीं पा रहे है लेकिन उस अनुभूति को अपनी चेतना में संजोकर रखा है। उस परम सत्ता के प्रति उनकी दृढ़ आस्था है। रहस्यवादी साधक का ईश्वर की सत्ता में आस्था का होना

आवश्यक होता है। रवीन्द्रनाथ कहते हैं कि, जब मैं पतवार छोड़ दूँगा, तो तुम उसे थाम लोगे, यह मैं जानता हूँ। उदाहरण अवलोकनीय है –

''आमि हाल छाड़ले तवे
तुमि हाल धरवे जानि।
जा हवार आपनि हवे
मिछे एहे टानाटानि।'' [59] (गीतिमाल्य, गीत संख्या -6)

रहस्यवाद का प्रमुख वैशिष्ट्य है कि, सच्चा साधक निःस्वार्थ भाव से ईश्वर के समक्ष अपने अहंभाव को त्यागकर आत्म-समर्पण करता है। कवि रवीन्द्र से लेकर संत, सूफी, छायावादी कवियों की रहस्य भावना इसी वैशिष्ट्य पर आधारित हैं। वे असीम सत्ता से कुछ प्राप्त करना नहीं चाहते बल्कि उस सत्ता में स्वयं को समर्पित कर केवल ब्रह्म को पाना चाहते है। भक्तिकालीन संत कबीर ने भी ब्रह्म और जीव में अद्वैत-भाव की सृष्टि के लिए अपने अहं के त्याग एवं आत्मनिवेदन के भाव को आवश्यक माना है। इसलिए तो वे कहते हैं - ''तूँ, तूँ करत तूँ भया, मुझमें रही न हूँ'', इसी आधार पर कवि रवीन्द्र ने भी 'गीतांजलि' काव्य संग्रह की प्रथम कविता में अपने समस्त अहं को त्याग कर ईश्वर के चरणों में अपना सर्वस्व अर्पण किया हैं। उदाहरण दृष्टव्य हैं –

''आमार माथा नत करे दाओ हे तोमार,
चरण धुलार तले।
सकल अहंकार हे आमार
डूबाओ चोखेर जले।'' [60] (गीतांजलि, गीत संख्या - 1)

रवीन्द्र अपने प्रसिद्ध निबंध 'मानव-धर्म' (1933 ई0 में प्रकाशित) में, अपने आरंभिक कविता संग्रह 'प्रभात संगीत' की कविता-पंक्तियों को सोदाहरण प्रस्तुत करते हुए पहली बार आध्यात्मिकता की अनुभूति की बात स्वीकारते हैं। वे लिखते हैं - ''यही मेरे जीवन की प्रथम अभिज्ञता थी जिसे आध्यात्मिक कहा

जा सकता है। उस समय जिस भाव से मैं प्रभावित हुआ उसका स्पष्ट रूप मेरी उन दिनों की रचनाओं में - 'प्रभात संगीत' की कविताओं में देखा जा सकता है।.....उस दिन चेतना ने ऊपर उठकर भूमा में प्रवेश किया।''[61] भूमा शब्द सामवेद के छान्दोग्य उपनिषद में आता है। जिसका अर्थ होता है – सर्व, विराट, विशाल, अनंत, विभु और सनातन। ''यो वै भूमा तत् सुखं नाल्पे सुखमस्ति'' अर्थात् भूमा तत्व में यानि व्यापकता, विराटता में सुख है। यह भूमा ही सब कुछ है, वही शरीर में स्थित आत्मा है। रवीन्द्रनाथ की समस्त रहस्यवादी कविताओं में इसी भूमा अर्थात् असीम के स्वरूप के प्रति, जिज्ञासा, आस्था, विरहानुभूति और अद्वैतभाव दिखलाई पड़ता हैं। उपेन्द्रनाथ भट्टाचार्य के अनुसार - ''रवीन्द्रनाथ विश्वजगेतर अन्तराले एक महान सत्-सुन्दरके उपलब्ध करियाछेन – एहे अनुभूतिहे ताहार काव्येर उत्स''[62] अर्थात् रवीन्द्रनाथ ने इसी विराट तत्व को अपने आंतरिक जगत में अनुभव किया था। जिसका प्रकाशन उनके बाह्य जगत अर्थात उनकी रहस्यवादी कविताओं पर पड़ा हैं। रवीन्द्रनाथ की आध्यात्मिक अनुभूति से संबंधित कविता 'मानसी' ,'खेया', 'गीतांजलि', 'गीतिमाल्य', 'गीतालि' आदि हैं जहाँ उन्होंने विराट तत्व को आधार बनाया हैं।

'मानसी' काव्य संग्रह में रहस्यानुभूति –

इसमें संकलित कविताएँ रवीन्द्रनाथ के उन मनोभावों का प्रमाण हैं, जिसे समय-समय पर उन्होंने विभिन्न क्षेत्रों से अर्जित किया हैं। 'मानसी' में कवि ने प्रेम का अद्भुत वर्णन किया है, यहाँ कवि एक चिंतक रूप में नजर आते हैं। कवि रवीन्द्र का मन आध्यात्मिक प्रकाश में खिलने हेतु जल तथा कीचड़ के समान संघर्ष करता है। 'व्यक्त प्रेम' नामक कविता में प्रेम के रहस्य को बतलाते हुए कहते हैं –

''लुकानो प्राणेर प्रेम पवित्र से कत।
आधार हृदय तले, मानिकेर मत जले,

आलोते देखाए कालो कलंकेर मत।।'' [63]

वे मंत्र-मुग्ध कर देने वाले प्रेम के सौन्दर्य के सहारे आध्यात्मिक शक्ति की खोज करते हैं। 'निष्फल कामना' शीर्षक कविता में कवि कामना के विभिन्न रूप पर प्रकाश डालते हुए वासना मुक्त प्रेम के रहस्य को साकारात्मक रूप दिया है। वे कहते हैं –

''उसका मधुर सौरभ लो,
उसका सौंदर्य-विकास निहारो,
उसका मकरंद पियो
प्रेम करो, प्रेम से शक्ति लो –
उसकी ओर ताको मत।
मानव की आत्मा आकांक्षा का धन नहीं है।'' [64]

अर्थात् कवि रवीन्द्र ने इस संग्रह में उदात्त प्रेम के महत्व को रहस्यात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है। 'वधू', शीर्षक कविता में साधक का अपने अराध्य को जानने की जिज्ञासा का भाव दिखाई पड़ता है। रहस्यवादी साधक में उस असीम के प्रति जिज्ञासा का होना स्वाभाविक हैं | उदाहरण दृष्टव्य हैं –

''बेला हो गई है, चल पानी भर लाएँ।
मानो कोई दूर पर पहचाने स्वर में
पुकार रहा है –
कहाँ है वह छाया सखी,
कहाँ है वह जल,
कहाँ है वह पक्का घाट
कहाँ है वह अश्वत्थ तल।'' [65]

'मानसी' में ऐसी कई धीर-गंभीर और उदात्त कविताएँ हैं जो रवीन्द्रनाथ के रहस्य साधना को प्रकट करती है।

<u>नैवेद्य काव्य संग्रह में रहस्यानुभूति –</u>

नैवेद्य के प्रकाशन, (1901) तक आते-आते रवीन्द्रनाथ अपने कर्मक्षेत्र शांतिनिकेतन के कार्यदायित्व और स्वदेशी आन्दोलनों से गहरे जुड़ चुके थे। अतः इस समय तक आते-आते अपने संकल्प पर दृढ़ रहने की कामना के साथ-साथ उस परम तत्त्व (असीम) पर आस्था और याचना भी सम्मिलित हैं। नैवेद्य काव्य संग्रह में 'प्रतिदिन मैं', 'हे जीवनस्वामी', 'तुम्हारे असीम में', 'अपनी पताका वहन करने की शक्ति', 'मुक्ति', 'न्याय-दंड', 'प्रार्थना', 'तुमसे मेरा यह शेष निवेदन' कविताओं में अध्यात्मिक प्रभाव परिलक्षित होता हैं। रहस्यवादी साधक की विशेषता इस बात में भी है कि वह जगतिक मोहबंधन के बीच भी ईश्वर से मुक्ति की प्रत्याशा करती है। कवि रवीन्द्र को अपने अराध्य पर पूर्ण विश्वास हैं| कवि रवीन्द्र कहते हैं कि, असंख्य बंधनों में, महा आनंदमय मुक्ति का स्वाद लूँगा। मेरा मोह तुम्हारे समक्ष मुक्ति बनकर जल उठेगा। मेरा प्रेम भक्ति बनकर फलेगा। उदाहरण दृष्टव्य हैं –

''असंख्य बंधन-माझे महानन्दमय
लभिब मुक्तिर स्वाद।
X X
मोह मोर मुक्तिरूपे उठिबे ज्वालिया
प्रेम मोर भक्तिरूपे रहिबे फलिया।'' [66]

(नैवेद्य काव्य से, मुक्ति कविता)

रवीन्द्रनाथ वैराग्य साधना को मुक्ति का द्वार नहीं मानते। उन्होंने भक्ति और मुक्ति दोनों को कर्म जीवन से जोड़े रखना चाहा हैं। उनका कहना हैं कि,

दृश्य, गंध और गान में जो आनंद है, उसी आनंद के साथ हे ईश्वर तुम्हारा आनंद भी सन्निविष्ट है।

''वैराग्य साधने मुक्ति से आमार नय।
इन्द्रियेर द्वार रूद्ध करि योगासन, से नहे आमार।
जा किछु आनंद आछे दृश्ये गन्धे गाने
तोमार आनन्द रबे तार माझखाने।।''[67]

वे उस असीम के आनंद को दृश्य, गन्ध, गान हर जगह महसूस करते हैं। रहस्यवादी साधक अपने अराध्य को प्रकृति के कण-कण में अनुभव करता है और उससे अद्वैत की स्थिति को भी स्वीकारता है। रवीन्द्रनाथ संसार में सत्य की साधना के आधार पर ईश्वर प्रेम में विलीन होकर मुक्त होना चाहते हैं। रणजीत साहा के अनुसार - ''रवीन्द्रनाथ जिस मुक्ति की कामना करते हैं, वह प्रकारांतर से संपूर्ण प्रकृति और मानव जाति में उनकी निर्मल आसक्ति ही है। उसके एक-एक तत्त्व और घटक-रूप-रस-शब्द-स्पर्श से युक्त यह जो विराट दृश्य पटल है, जड़ चेतनमय विश्व है – उसकी व्याप्ति और प्रसन्नता से जुड़ना ही उनकी मुक्ति है।''[68] कवि उस चेतनामय ईश्वर से स्वयं को अलग नहीं पाते। जीवन की हर चुनौतियों में असीम की अनुभूति स्वीकारते हैं। 'नैवेद्य' काव्य संग्रह के गीत संख्या 14 में वे कहते हैं –

''तुम्हारे असीम में
अपना प्राण मन लेकर
मैं जितना भी दूर चला जाता हूँ
कहीं भी दुःख, कहीं भी मृत्यु
कहीं भी विच्छेद नहीं पाता हूँ।''[69]

इस काव्य संग्रह की रहस्यवादी कविताओं में कवि रवीन्द्र का उस असीम से एकात्म भाव, प्रार्थना, याचना, दृढ़ आस्था जैसे गुण सम्मिलित है जो रहस्यवादी साधक का महत्वपूर्ण वैशिष्टय हैं |

<u>खेया काव्य संग्रह में रहस्यानुभूति –</u>

इस काव्य संग्रह की कविताओं का रचनाकाल कवि के व्यक्तिगत जीवन में घटित होनेवाली त्रासदी का रहा है। इसके बावजूद वे अपने चित्त को एकाग्र और संयत करने में लगे रहे। खेया की बहुत-सी कविताओं में रहस्यवादी भावों को अधिक प्राथमिकता मिली है, जिसमें - 'शुभ क्षण', 'अनावश्यक', 'आगमन', 'दान', 'दुःखमूर्ति', 'गोधूलिलग्न', 'निरूद्यम', 'कृपण', 'प्रच्छन', 'खोया धन' आदि कविताएँ संकलित हैं।

'शुभ क्षण' कविता में कवि ने एक प्रणयिनी के रूप में अपने अराध्य या प्रेमी को अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया हैं। समर्पण के इस आनंद को वह अपनी माँ से बाँट रही है। रहस्य साधना में अराध्य के प्रति समर्पण का भाव साधक के लिए महत्वपूर्ण होता है। इस आनंद को कवि रवीन्द्र इसमें व्यक्त कर रहे हैं। उदाहरण अवलोकनीय हैं –

''मैंने किसे क्या दिया, यह बात कोई नहीं जानता,
वह तो धूल से ढँकी रह गई।
तो भी राजा का दुलारा मेरे घर के
सामनेवाले रास्ते से निकल गया
अपने वक्षस्थल की मणियों को
न्यौछावर किए बिना मैं कैसे रहती, बता तो भला।''[70]

'कृपण' शीर्षक कविता में कवि रवीन्द्र निःस्वार्थ भाव से समर्पण की महत्ता का प्रतिपादन करते दिखलाई पड़ते हैं। इस कविता में प्रणयिनी आत्मा अपने ईश्वर को सर्वस्व समर्पित न कर पाने की पछतावे से दुःखी है। भिखारिणी

रूपी आत्मा प्रियतम के रथ का और उस पर आरूढ़ महाराज के आगमन की प्रतीक्षा कर रही है। लेकिन जैसे ही रथ यात्रा के दौरान महाराजा ने अपना रथ रोककर, भिखारिन के सामने हाथ पसार कर कहा - 'मुझे कुछ दो'। आश्चर्य चकित हो भिखारिणी ने अपनी झोली से एक दाना निकाल कर दे दिया। घर लौटकर जब उसने अपनी झोली खाली की तो उसने देखा राज भिखारी को दिया गया एक दाना सोने के कण में बदल गया है। इसे देखकर भिखारिणी अपनी कृपणता पर पश्चाताप करने लगती है। उदाहरण दृष्टव्य हैं –

''उस समय दोनों आँखों में आँसू भर कर रो उठी,
क्यों नहीं अपना सर्वस्व उड़ेल कर तुम्हें दे दिया?''[71]

कवि रवीन्द्र ने ईश्वर साधना के मार्ग पर निःस्वार्थ भाव से न्यौछावर होने की भावना को महत्व दिया हैं।

<u>गीतांजलि काव्य संग्रह में रहस्यानुभूति –</u>

गीतांजलि की कविताएँ अनंत से अनंत तक का विस्तार है। इस काव्य संग्रह में अनेक प्रकार की भावधाराएँ प्रभावित हैं – दुःख, पीड़ा, उदासी, प्रसन्नता और आध्यात्मिकता । इसका केन्द्रीय भाव परमात्मा को अनुभव कर उसे प्राप्त करना है। इस संग्रह में प्रकृति के प्रति पूर्ण प्रेम भाव और प्रकृति में असीम यानी ईश्वर की उपस्थिति को रवीन्द्रनाथ स्वीकारते हैं। उनका परमात्मा प्रकृति के साथ एकमेक है। रवीन्द्रनाथ की गीतांजलि जीव तथा परमात्मा, अनित्य और नित्य के रहस्यात्मक संबंध की परमलीला है। इस संग्रह का प्रत्येक गीत रहस्यवाद का प्रतीक है। कवि समस्त अहंकार को अश्रुजल में डुबो देने की प्रार्थना गीतांजलि के प्रथम गान में ही करते हैं। उदाहरण अवलोकनीय है –

''आमार माथा नत करे दाउ हे तोमार
चरण धुलार तले।

सकल अहंकार हे आमार
डुबाओ चोखेर जले''[72]

रहस्य साधना के मार्ग में, अहंकार ईश्वर या अराध्य से मिलन में बाधा है। रवीन्द्रनाथ रहस्यवादी साधक हैं। अतः वे अहंकार के विसर्जन की बात स्वीकारते हैं।

गीतांजलि में उपनिषदों की गूढ उक्तियों को बड़े सरल और सहज ढंग से अभिव्यक्ति मिली है। इसके कई गीत में जीवन के सत्य को तत्व-दर्शन के आलोक में प्रकट किया गया है। रवीन्द्र ने इस तथ्य को उपलब्ध किया हैं कि, असीम की अभिव्यक्ति और उसकी लीला इसी जगत की सीमा में संपन्न होती है। नाना रूपात्मक जगत् के बीच ही अरूप प्रकट होता है। वे कहते हैं -

''सीमार माझे, असीम, तुमि
बाजाओ आपन सूर
आमार मध्ये तोमार प्रकाश
ताई एतो मधुर।
कत वर्णे, कत गन्धे,
कत गाने कत छन्दे
अरूप तोमार रूपेर लीलार
जागे हृदयपुर।''[73] (गीत संख्या-120)

वह अरूप जिसने नाना रूपों में स्वयं को प्रकाशित किया हैं। इस आनंदरूपी अरूप रतन को पाने की चाह में कवि रूप-सागर में डुबकी लगाते दिखाई पड़ते हैं। उदाहरण दृष्टव्य है -

''रूपसागरे डूब दियेछि,
अरूप रतन आशा करि,
घाटे घाटे घुरबो ना आर,

भासिए आमार जीर्ण तरी।''[74] (गीत सं0-47)

रहस्य साधना का वैशिष्ट्य है कि साधक अपने अराध्य से मिलन के लिए व्याकुल हो उठता है। कवि रवीन्द्र की आंतरिक वेदना और उत्कट मिलनेच्छा अराध्य या ईश्वर की प्रत्याशा में प्रतीक्षारत है। एक-एक क्षण उनके लिए भारी हो गया है। वे व्याकुल मन से अपने अराध्य से निवेदन करते हैं –

''तुमि जदि ना देखा दाओ,
कर आमार हेला
केमन करे काटे आमार
एमन बादल वेला।
दूरेर पाने मेले ऑखि,
केवल आमि चेये थाकि,
परान आमार केंदे बेड़ाये
दूरान्त आकाशे।''[75] (गीत सं0-16)

गीतांजलि में रवीन्द्रनाथ एक प्रणयिनी आत्मा के रूप में अपने अराध्य परमात्मा के संग विरह और मिलन की स्थिति में कभी प्रणयिनी, कभी चिरसंगिनी, कभी भिखारिणी और कभी हतभागिनी के रूप में प्रस्तुत होते हैं। प्रियतम, अराध्य, अन्तर्यामी से प्रणय याचना संबंधी कई रहस्यवादी कविताओं में कवि रवीन्द्र के इस रूप को देखा जा सकता हैं। विदित है कि, संसार के प्राणियों में स्त्री एवं पुरुष के बीच जो लिंगभेद है, रहस्यवाद इसे स्वीकार नहीं करता। अद्वैतवादी चिंतन , संत और सूफी परम्परा में भी इस लौकिक, लैंगिक पार्थक्य को नकार जाता रहा है। संत कबीर स्वयं को 'राम की बहुरिया' बतलाते हैं। कवि रवीन्द्र की असीम से नहीं मिल पाने की स्थिति में विरह-वेदना के अनुभूति को प्राप्त करता हुआ, स्वयं को हतभागिनी कहकर पुकारते हैं -

''से जे पासे ऐसे बसेछिलो,

तबु जागिनी।

की घूम तोरे पेयेछिलो,

हतभागिनी।

ऐसे छिले, निरव रात्रे

वीणारवानि छिलो हाते,

स्वप्न माझे बसिये गेलो,

गभीर रागिनी।''[76] (गीत सं0-61)

अतः इस काव्य संग्रह की रहस्यवादी कविताओं में ईश्वर प्राप्ति के मार्ग में अहं का विसर्जन, ईश्वर से मिलन की आकांक्षा में विरह-वेदना की अनुभूति दीन-दरिद्र में ईश्वर का रूप और असीम के लीला तत्व की नाना रूपों में दर्शन की रहस्यात्मक अभिव्यक्ति हुई हैं। गीतांजलि उपनिषद की तत्त्व चिन्ता एवं आध्यात्मिकता का सन्निवेश है।

<u>गीतिमाल्य काव्य संग्रह में रहस्यानुभूति</u> –

गीतिमाल्य को गीतांजलि का भाव विस्तार माना जा सकता है। इस काव्य संग्रह की रहस्यवादी कविताओं में असीम की खोज, उसके प्रति दृढ़ आस्था और आत्मदान का भाव पूर्ववत् दोहराया गया है। उन्होंने रहस्य साधना के पथ पर साधक के महत्व को भी स्वीकारा है क्योंकि साधक के अभाव में साध्य भी अर्थहीन होता है। व्यक्ति सर्वव्यापी आत्मा का ही विस्तार है और वह अनेक प्रकार के संघर्षों को झेलता हुआ उसी परम सत्ता की ओर आकर्षित होता है। 'गीतिमाल्य' के गीत संख्या 15 में इस उदाहरण को देखा जा सकता है –

''तुमि तोमार राखबे दूरे,

डाकवे तारे नाना सूरे,

आपनारि विरह तोमाए

आमाय निल काया''[77] (गीत सं0-15)

कवि रवीन्द्र कहते हैं कि, जब तुम अपने को दूर रखोगे और फिर नाना सूर से उसे पुकारोगे, तब तुम्हारे ही विरह ने मेरी काया का रूप ले लिया हैं । सर्वव्यापी में लीन होने की भावना का वर्णन 'गीतिमाल्य' में मिलता है। असीम में अद्वैत की भावना रहस्यवाद का प्रमुख वैशिष्टय हैं |

इस संग्रह की रहस्यवादी कविताओं में कवि का उस असीम सत्ता में दृढ़ विश्वास दिखलाई पड़ता है। वे कहते हैं कि, मैं जानता हूँ यदि मैंने अपने जीवन रूपी पतवार को तुम्हारे भरोसे छोड़ दिया तो तुम मुझे इस संसार रूपी नदी से पार करा दोगे। रहस्यवादी साधक का अपने अराध्य में दृढ़ आस्था का होना आवश्यक है। इसे गीतिमाल्य के गीत संख्या-6 में देखा जा सकता है –

''आमि हाल छाड़ले तवे
तुमि हाल धरवे जानि।
जा हवार आपनि हवे,
मिछे एहे टानाटानि।''[78]

अर्थात् इस काव्य संग्रह में भी गीतांजलि के समान ही ईश्वर की सत्ता में दृढ़ आस्था, उसके प्रति जिज्ञासा और दूर होने की भावना के कारण विरह और फिर अद्वैत स्थिति की झलक स्पष्ट दिखाई पड़ती है।

<u>गीतालि काव्य संग्रह में रहस्यानुभूति –</u>

गीतांजलि के अनुरूप ही कवि गीतालि में भी अपना सुख-दुःख, मान-अपमान, हानि-लाभ और अपना सर्वस्व अपने अराध्य के समक्ष समर्पित कर देना चाहते हैं। कवि अपने जीवन के निशीथ रात्रि, घर का दीप, अपनी शक्ति और अपने अभिमान को अराद्य के पास सौंप देना चाहते हैं। गीतालि के गीत संख्या-67 में इस भाव को देखा जा सकता है-

''लओ गो आमार निशीथ रात्रि,
लओ गो आमार घरेर बाति,

लओ गो आमार सकल शक्ति

सकल अभिमान।''[79] (गीत संख्या-67)

इस संग्रह की छोटी-छोटी कविताओं में आत्म-निवेदन के साथ त्याग, प्रेम, विरह, मिलन में रहस्यवादी भावनाओं का चित्रण मिलता हैं। जिस प्रियतम या अराध्य ने उन्हें कठिन परिस्थितियों में संभाला हैं। जिसने उनके जीवन के समस्त अंधकार को दूर कर उनके जीवन को अमृतमय बना दिया हैं। उस रहस्यमयी सत्ता का अभ्युदय कामना कवि गीतालि के गीत संख्या-101 में कर रहे हैं। उदाहरण देखे जा सकते हैं –

''भेंगेछे दुयार ऐसेछे ज्योतिर्मय,
तोमारि हउक जय।
तिमिर दुःसह, एसो एसो निर्दय,
तोमारि हओक जय।
प्रभात सूर्य, ऐसेछे रूद्रसाजे,
दुःखेर पथे तोमार सूर्य बाजे
अरूणवड़ि ज्वालाओ चित्त माझे
मृत्युर होक लय।''[80]

कवि यहाँ द्वार तोड़कर अंधकार को परास्त करनेवाले ज्योतिर्मय का जय-गान करते हैं। वह ज्योतिर्मय एक तरफ किसी के लिए निर्दय है तो दूसरी ओर निर्मल भी। रूद्रवीणा-सुर से सज्जित वह प्रभात-सूर्य सारे दुःख संताप पर जय करेगा। कवि कहते हैं कि उस रूद्रवीणा के प्रति इतनी आस्था प्रज्जवलित करो ताकि मृत्यु भी उसी में निमज्जित हो जाए। अर्थात् इस संग्रह में उस असीम के प्रति अद्वैतभाव के साथ दृढ़ आस्था का स्वर और आत्मसमर्पण का भाव मिलता है। इस संबंध में उपेन्द्रनाथ भट्टाचार्य का कथन है कि, ''कविर अध्यात्म-जीवन शेष परिणति लाभ करिलेन। खेयार आकूल आकांक्षा ओ प्रतीक्षा,

गीतांजलि ओ विरहानुभूति गीतालिते परिपूर्ण उपलब्धि ओ आत्मसमर्पने सार्थकता लाभ करिलेन।''[81] अर्थात् इस संग्रह में कवि अपनी आत्मा का परमात्मा में समर्पित कर सार्थकता पाना चाहा है।

रवीन्द्रनाथ पर रहस्यवादी भावना का प्रभाव उनकी आरम्भिक कुछ काव्य-संग्रह 'प्रभात संगीत', 'संध्या संगीत', 'चित्रा', 'उत्सर्ग', 'कणिका', 'सोनार तरी' में भी उपलब्ध है। परन्तु रहस्य भावना से प्रभावित मूल काव्य संग्रह हम 'खेया' से होते हुए गीतांजलि, गीतिमाल्य, गीतालि को मान सकते हैं। इस समय की रचनाओं पर आध्यात्मिकता का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता हैं।

<u>निष्कर्ष</u> – हिंदी की महादेवी और बांग्ला क्षेत्र से विश्व वरेण्य रवीन्द्रनाथ ठाकुर में भाषाई अंतर होने के बावजूद दोनों की रहस्यवादी कविताओं का मूल उत्स 'उपनिषद' एक हैं। दोनों के रहस्यवाद पर भारतीय दर्शन के अद्वैतभाव, संत काव्य और सूफी काव्य परम्परा के प्रभाव की स्पष्ट झलक परिलक्षित हुई हैं। दोनों की रहस्यवादी कविताओं में निम्नलिखित भावनाओं को देखा जा सकता है – (i) असीम और अलौकिक प्रियतम के प्रति जिज्ञासा भाव। (ii) उस ब्रह्म रूपी अलौकिक प्रियतम को जानने के पश्चात् उस पर आस्था भाव। (iii) उस ब्रह्म रूपी अलौकिक या अशरीरी प्रियतम से मिलन की इच्छा के बावजूद, मिलन न हो पाने की स्थिति में तीव्र विरह वेदना की अनुभूति का भाव। (iV) दुःख और वेदना को सहन करने के उपरांत अहं भाव का विसर्जन कर उस असीम के पास आत्मसमर्पण का भाव। (V) असीम और समीम के लीलातत्व को प्रकृति के कण-कण में अनुभूति का भाव। अतः महादेवी और रवीन्द्रनाथ दोनों की रहस्यवादी कविताओं में इसी भावभूमि को अधिक प्रश्रय मिला है। आधुनिक युग के महादेवी और रवीन्द्रनाथ के काव्य में रहस्यानुभूति की व्यापकता और गंभीरता तथा उसकी अभिव्यक्ति की कलात्मकता अनुपम और अतुल्य है।

सन्दर्भ - ग्रन्थ - सूची -

1. महादेवी, दूधनाथ सिंह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011, पृ. – 296
2. महादेवी साहित्य (खण्ड - चार), सं. - निर्मला जैन, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, तृतीय संस्करण - 2007, पृ. - 345 (मेरी साहित्य यात्रा : कविता के सन्दर्भ में)
3. वहीं, पृ. - 351 (मेरे बचपन के दिन)
4. यामा, महादेवी वर्मा, किताबिस्तान, इलाहाबाद और लन्दन, प्रथम प्रकाशन - 1939, पृ. - 1
5. महीयसी महादेवी, गंगाप्रसाद पाण्डेय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण - 2007, पृ. - 31
6. महादेवी विचार और व्यक्तित्व, शिवचन्द्र नागर, प्रेरणा प्रकाशन, मुरादाबाद, द्वितीय संस्करण - 1985, पृ. - 136 - 137
7. महादेवी, दूधनाथ सिंह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011, पृ. - 281
8. महादेवी साहित्य (खण्ड - 1), सं. - निर्मला जैन, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, तृतीय संस्करण - 2007, पृ. - 416
9. महादेवी साहित्य (खण्ड - चार), सं. - निर्मला जैन, पृ. - 339 (मैं और मेरा परिवेश)
10. महीयसी महादेवी, गंगाप्रसाद पाण्डेय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2007, पृ. - 30
11. महादेवी साहित्य (खण्ड - 1), सं. - निर्मला जैन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण - 2007, पृ. - 416
12. वहीं, पृ. - 428
13. महीयसी महादेवी, गंगाप्रसाद पाण्डेय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2007, पृ. - 30
14. रवीन्द्र - कविता - कानन (निराला रचनावली -5), नंद किशोर नवल, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1983, पृ. - 26
15. रवीन्द्र रचनावली (नवम खण्ड), रवीन्द्रनाथ ठाकुर, विश्वभारती ग्रंथम विभाग, कोलकाता, बंगाब्द - 1417 (पुनर्मुद्रण), पृ. - 459

16. रवीन्द्र जीवन कथा, प्रभात मुखोपाध्याय, आनन्द पब्लिशर लि., कोलकाता, बंगाब्द - 1388 (पुनर्मुद्रण), पृ. - 5
17. रवीन्द्र रचनावली, नवम खण्ड, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, विश्वभारती ग्रंथम विभाग, कोलकाता, बंगाब्द - 1417 (पुनर्मुद्रण), पृ. - 457
18. रवीन्द्रनाथ टैगोर रचनावली, प्रधान सं. - इन्द्रनाथ चौधुरी, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण - 2013, पृ. - 22 (शिक्षा का विस्तार)
19. संचयिता, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, शुभम प्रकाशन, कोलकाता, तृतीय संस्करण - 2011, पृ. - 18
20. वहीं, पृ. - 337
21. रवीन्द्र रचनावली (खण्ड - 6), रवीन्द्रनाथ ठाकुर, विश्वभारती ग्रंथम विभाग, कोलकाता, बंगाब्द - 1417 (पुनर्मुद्रण), पृ. - गीतांजलि गान एक
22. आधुनिक साहित्य, नंददुलारे वाजपेयी, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, पांचवां संस्करण - सं० 2031 वि०, पृ. – 317
23. महादेवी साहित्य (खण्ड - 1), सं. - निर्मला जैन, पृ. - 421
24. वहीं, पृ. - 115
25. वहीं, पृ. - 105
26. वहीं, पृ. - 35
27. महादेवी साहित्य (खण्ड - 4), सं. - निर्मला जैन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण - पृ. - 419
28. महादेवी : नया मूल्यांकन, डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, तृतीय संस्करण - 2008, पृ.- 90
29. महादेवी साहित्य (खण्ड - 1), सं. - निर्मला जैन, पृ. - 420
30. वहीं, पृ. – 264

31. महादेवी का रचना संसार, डॉ. राजेंद्र मिश्र, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पृ. - 151
32. महादेवी साहित्य (खण्ड - 1), सं. निर्मला जैन, पृ. - 29
33. वहीं, पृ. - 33
34. वहीं, पृ. - 35
35. वहीं, पृ. - 35
36. वहीं,पृ. - 94
37. वहीं, पृ. - 416
38. वहीं, पृ. - 135
39. वहीं, पृ. - 143
40. वहीं, पृ. - 162
41. आधुनिक साहित्य, नंददुलारे वाजपेयी, भारती भंडार लीडर प्रेस, इलाहाबाद, पाँचवा संस्करण - सं० 2031 वि०, पृ. - 317
42. महादेवी साहित्य (खण्ड - 1), सं.- निर्मला जैन, वाणी प्रकाशन, इलाहाबाद, तृतीय संस्करण - 2007, पृ. - 182-183
43. वहीं, पृ.- 173
44. वहीं, पृ. - 183
45. वहीं, पृ. - 187
46. वहीं, पृ. - 234
47. वहीं, पृ.- 249
48. वहीं, पृ. - 258
49. वहीं, पृ. - 278
50. वहीं, पृ. - 267
51. वहीं, पृ. - 273
52. वहीं, पृ. - 262

53. वहीं , पृ0-335
54. वहीं, पृ0-361
55. वही, पृ0-353
56. वहीं, पृ0-363
57. रवीन्द्र रचनावली, खण्ड-6, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, विश्वभारती ग्रंथम विभाग, कोलकाता, बंगाब्द-1421, पृ0-112
58. रवीन्द्र रचनावली, खण्ड-6, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, विश्वभारती ग्रंथम विभाग, कोलकाता, बंगाब्द-1421, पृ0-122
59. वहीं, पृ0-109
60. वहीं, पृ0-13
61. रवीन्द्रनाथ टैगोर रचनावली, खण्ड-32, प्रधान संपादक – इंद्रनाथ चौधुरी, प्रकाशक-सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2014, पृ0-115-117
62. रवीन्द्र-काव्य-परिक्रमा, उपेन्द्रनाथ भट्टाचार्य, प्रकाशक-श्री प्रह्लाद कुमार प्रमाणिक, कोलकाता, अष्टम संस्करण-1406 (बंगाब्द)
63. संचयिता, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, शुभम प्रकाशन, कोलकाता, तृतीय संस्करण-2011, पृ0-49
64. रवीन्द्रनाथ टैगोर रचनावली, भाग-1, प्रधान संपादक-इन्द्रनाथ चौधुरी, प्रकाशक-सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2014, पृ0-82
65. वहीं, पृ0-86
66. संचयिता, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, शुभम प्रकाशन, कोलकाता, तृतीय संस्करण-2011, पृ0-313
67. वहीं, पृ0-313

68. रवीन्द्र मनीषा, रणजीत साहा, साहित्य अकादेमी, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण-2015, पृ0-130
69. रवीन्द्रनाथ टैगोर रचनावली, भाग-2, प्रधान संपादक-इन्द्रनाथ चौधुरी, पृ0-28
70. वही, पृ0-93
71. वही, पृ0-111
72. रवीन्द्र रचनावली, खण्ड-6, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, विश्वभारती ग्रंथम विभाग, कोलकाता, बंगाब्द-1421 (पुनर्मुद्रण), पृ0-गीतांजलि प्रथम गान
73. वही, पृ0-80
74. वही, पृ0-38
75. वही, पृ0-21
76. वही, पृ0-46
77. वही, पृ0-118
78. वही, पृ0-109
79. वही, पृ0-207
80. वही, पृ0-224
81. रवीन्द्र–काव्य–परिक्रमा, उपेन्द्रनाथ भट्टाचार्य, प्रकाशक-श्री प्रह्लाद कुमार प्रमाणिक, कोलकाता, अष्टम संस्करण-1406 (बंगाब्द), पृ0-551